श्रीकृष्ण-संदेश

कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्

वर्ष १५

अङ्क

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान, मथु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

BEST THING TO GIVE

The best thing to give is :

to your enemy, FORGIVENESS ;
to an opponent, TOLERANCE ;
to a friend, YOUR HEART ;
to your child, A GOOD EXAMPLE ;
to a father, DEFENCE ;
to your mother CONDUCT
that will make her proud of you ;
to yourself, RESPECT
to all men, CHARITY

—Balfour.

With Best Compliments
FROM
ELECTROSTEEL CASTINGS LTD.
STEPHEN HOUSE, 4, B B D. BAGH [EAST],
CALCUTTA—1
(Regd. Office. : P. O. Rajgangpur. Orissa.)

Gram : GRINDMEDIA | Phone: 23—4071 (5 Lines)

Works :
P. O. Sukchar
B. T. Road
24—Paraganas (W. B.)

Works :
A—7 Industrial Area
Near Rly Signal Workshop
GHAZIABAD (U. P.)

Manufacturers of
Grinding Media, Steel Castings and Cast Iron Spun Pipes.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवा-संस्थान

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणत क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमोनमः॥

अनुक्रमणिका

श्रीकृष्ण - सन्देश, सितम्बर १९८०

१. सन्देश चिन्तन ३
२. मासचर्या—आश्विन ५
३. गीतांजलि ७
४. मैं धो दूं ९
५. रामकृष्ण परमहंसका वाल्यकाल ११
६. अहंकार १५
७. नन्दग्रामका प्रातःकाल १९
८. निवन्ध प्रतियोगिता २०

प्रभु आवत

(श्री सुदर्शनसिंह 'चक्र')

३५. कैकय-नरेश
३६. दक्षिण कोशल
३७. महाराज सुमित्र
३८. महाराज जनक
३९. महर्षि याज्ञवल्क्य
४०. महारानी सुनयना
४१. कुमार लक्ष्मीनिधि
४२. वहिन शान्ता

वे मिलेंगे

(श्री सुदर्शनसिंह 'चक्र')

१. आचार्य शुक्र १६१
२. महर्षि अगस्त्य १६३
३. महर्षि गौतम १६५
४. महर्षि लोमश १६७
५. महर्षि मार्कण्डेय १६९
६. महर्षि पराशर १७१
७. महर्षि याज्ञवल्क्य १७३
८. महर्षि भरद्वाज १७५
९. भगवान वादरायण १७७
१०. महर्षि असित १७९
११. महर्षि मेधातिथि १८१
१२. मंगलमूर्ति गणेश १८५
१३. भगवान शिव १८७
१४. भगवती पार्वती १८९
१५. भगवती लक्ष्मी १९

एक प्रतिका मूल्य : १/- वार्षिक शुल्क : १०/- आजीवन शुल्क : १५१/-

सम्पादक—सुदर्शनसिंह 'चक्र'

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा संस्थानके लिए श्रीमनोहरलाल 'पाठक' द्वारा शारदा प्रिन्टर्स, मथुरामें मुद्रित करवाकर श्रीकृष्ण-जन्म-स्थान-सेवा-संस्थान मथुरा २८१००१ से प्रकाशित।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रघुपति राघव राजाराम । पतित पावन सीताराम ॥

With Best Compliments

From

THE GWALIOR RAYON SILK MFG. (WVG) Co. Ltd.

Birlagram, Nagda (W. Rly.)

★

STAPLE FIBRE DIVISION, BIRLAGRAM

Manufacturers of Viscose Staple Fibre.

★

ENGINEERING DIVISION, BIRLAGRAM

Manufacturers of Rayon & Alied Chemical Plant & Machinery

★

CHEMICAL DIVISION, BIRLAGRAM

Manufacturers of Rayon Grade Caustic Soda.

★

Telegram :
GRASIM—BIRLAGRAM.

Telephone :
Nagda. 38 & 88

रघुपति राघव राजाराम । पतित पावन सीताराम ॥

रघुपति राघव राजाराम । पतित पावन सीताराम ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धर्म, अध्यात्म, साहित्य एवं संस्कृति प्रधान
मासिक पत्र

श्रीकृष्ण-सन्देश

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥

प्रवर्तक
पुण्यश्लोक श्री जुगलकिशोर बिरला

वर्ष १५) मथुरा श्रीकृष्ण संवत् ५२०६—सितंबर १९८० (अङ्क ९

सन्देश-चिन्तन

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥८-१६॥

सामान्यार्थ—अर्जुन ! ब्रह्मलोक तक सब लोक पुनरावर्ती हैं । कौन्तेय ! मुझे प्राप्त [...] पुनर्जन्म नहीं होता ॥८-१६ ॥

विशेष—यह श्लोक पुनरावर्तन तथा यज्ञ, तप, सत्कर्मादिके फलोंकी सीमा सूचित [...] लिए आया है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जितने भी पुण्य कर्म यज्ञ, तप, दानादि, वे अन्तःकरणमें संस्कार उत्पन्न करते हैं। अन्तःकरणमें पड़े सस्कार कालान्तरमें अपना फल उत्पन्न करते हैं।

पुण्य कर्मोंका फल सुख और पाप कर्मोंका फल दुःख होता है। यहाँ तक कि निष्काम कर्मसे भी अन्तःकरण की शुद्धि अर्थात् पापका क्षय ही होता है।

संसारमें प्राप्त पार्थिव-पाञ्चभौतिक शरीर एक सीमा तक ही सुख या दुःख भोगनेकी शक्ति रखता है। इसलिए जब पुण्य संस्कार बहुत अधिक होते हैं तो उनका फल भोगने जीव स्वर्गादि ऊपरके लोकोंमें जाता है और पाप कर्म अधिक होनेपर नरकोंमें जाता है।

जैसे स्वादिष्ट आहार देने वाला पुण्य कर्म है। लेकिन किसी भी पार्थिव शरीरमें तो पेट भरनेके बाद स्वाद आवेगा नहीं। लेकिन देवलोकके भोग देहमें पेट भरने जैसी बाधा नहीं है। वहाँ दीर्घकाल तक स्वादका सुखानुभव चलता रह सकता है।

इन देव लोकोंकी भी सीमा है। पृथ्वीके ऊपर ६ लोक हैं। पृथ्वी अर्थात् मनुष्य लोक सहित सात। इनमें दूसरा भुवर्लोक प्रेत, यक्षादिका है। तीसरा स्वर्लोक या स्वर्ग देवताओंका। चौथा महर्लोक सिद्धलोक कहा जाता है। पाँचवाँ जनलोक आकल्पान्त रहने वाले ऋषि-मुनियोंका और छटा तपोलोक भी ऋषियोंका, सातवाँ सत्य लोक ब्रह्मलोक कहलाता है।

ब्रह्मलोक तकके सब लोक पुनरावर्ती हैं। पुण्य कैसा भी महान हो, उसका भोग अन्ततः समाप्त होता है। अतः ब्रह्मलोक तक पुण्य कर्मों से पहुँचे जीवोंको भी पुनर्जन्म लेना पड़ता है।

'मामुपैत्यतु पुनर्जन्म न विद्यते'—भगवान कहते हैं कि मुझे प्राप्त करके फिर जन्म नहीं होता।

निर्गुण निराकारसे एकत्व प्राप्त होने पर अर्थात् कैवल्यमोक्षसे तो पुनर्जन्मका प्रश्न ही नहीं उठता। लेकिन यहाँ ब्रह्मलोकों तक की चर्चामें 'मामुपैत्य' कहा गया है। इसके पहिलेके श्लोकोंमें भी 'मामुपेत्य' तथा 'तस्याहंसुलभः, आया है। इन सबमें 'अहं' और 'मां' का अर्थ सगुण साकार श्रीकृष्ण है। अतः 'मामुपैत्य' का अर्थ है भगवल्लोक (वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत) पहुंचकर पुनर्जन्म नहीं होता ॥८–१६॥

—☼—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मासचर्या—

आश्विन्

दुग्धमाश्वियुजे वर्ज्यम् ।

आयुर्वेद इस पक्षमें नहीं है कि प्रत्येक रोगीको पथ्यमें दूध दिया जाय। पुराने वैद्य तो पथ्यमें दूध बतलाते ही नहीं थे। केवल टाइफाइड ज्वरमें दूध पथ्य है। आश्विन महीनेमें चातुर्मास्य व्रतमें तो दूध त्याज्य है ही, स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी हानिकर है। इस महीनेमें पित्तके विकृत होनेसे ज्वर होता है। दूध कफ कारक है; किन्तु पित्तको शान्त नहीं करता। अतः पित्तके साथ कफमें भी वृद्धि हो जाय तो स्वास्थ्य बिगड़ेगा ही।

'क्वार करैला' की बात भी ठीक है। क्वारमें करैला ही नहीं, दूसरी सब पित्तवर्धक वस्तुयें भी हानिकर हैं। बड़ी बात यह कि इस महीने ब्रह्मचर्यका पालन आवश्यक है। पितृपक्ष और नवरात्रमें धार्मिक दृष्टिसे भी और स्वास्थ्यके लिए भी।

आश्विनेऽमृतंतक्रम् ।

मैं बालक ही था जब मुझे मेरे ग्रामके वृद्ध वैद्यजी ने कहा था—'भाद्रपूर्णिमासे आश्विन पूर्णिमाके मध्य यदि जाड़ा देकर ज्वर आता हो तो गौके दूधके दहीको मथकर, मक्खन निकालनेके बाद दहीसे आठ गुने पानीको मिलाकर बने छाछमें भुना जीरा और नमक मिलाकर भरपेट रोगीको पिला देनेसे ज्वर चला जाता है।'

मैंने इसका प्रयोग किया और लाभ हुआ; किन्तु वैसेही ज्वरमें आश्विन पूर्णिमा (शरद पूर्णिमा) के दो-चार दिन बाद मट्ठा देनेसे बहुत हानि हुई।

आश्विनमें नीबूका सेवन बहुत लाभ करता है; क्योंकि नीबू पित्तको शान्त करता है। स्मरण रखना चाहिए कि नीबूका बीज हानिकारक होता है। अतः बीज सावधानीपूर्वक निकाल देना चाहिए। नीबूकी शिकञ्जी लेसकते हैं। नीबू भोजनमें लेसकते हैं। वैसे भी चूस सकते हैं।

मनुष्योंके ६ महीनेके बराबर देवताओंका एक दिन होता है। उसमें आश्विन मध्याह्नकाल है। इसका कृष्णपक्ष पितरोंका और शुक्लपक्ष देवताओंका आहार काल है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। अतः पूरा कृष्णपक्ष है श्राद्धपक्ष। जिसके माता-पिता, पितामह आदि जिस तिथिको मरे हैं, पितृपक्षकी उस तिथिको उनका श्राद्ध करना चाहिए। जिनके मृत्युकी तिथि ज्ञात नहीं, उनका श्राद्ध अमावस्याको किया जाता है।

आश्विन शुक्ल प्रतिपदासे नवरात्र प्रारम्भ होता है। इसमें प्रतिपदासे क्रमशः नौ दिन नौ दुर्गाकी आराधनाके हैं। अष्टमी, नवमी और दशमी सरस्वती पूजनकी तिथियाँ हैं।

दशमी विजया दशमी है। यह प्रत्येक शुभ कार्यके लिए सिद्ध मुहूर्त है। इस दिन शमी-पूजन, अपराजिता-पूजन होता है। नीलकंठ पक्षीका दर्शन शुभ माना जाता है। यही बौद्धावतारकी जयन्ती है।

एकादशीको दुग्धदान करके चातुर्मास्य व्रती दूध लेना प्रारम्भ करते हैं और मट्ठेका त्याग कर देते हैं।

आश्विन पूर्णिमाको शरत्पूर्णिमा कहा जाता है। श्रीकृष्णके महारासकी यह पूर्णिमा है। वृन्दावनमें श्रीबांके विहारीजी इस दिन वंशी धारण करते हैं। इस तिथिकी रात्रि महारात्रि मानी जाती है। यह कोजागर पूर्णिमा है। भजन-पूजन करते रात्रिमें जागरण करनेसे लक्ष्मीजीकी कृपा प्राप्त होती है।

—*—

दानेन पाणिर्नतु कंकणेन, स्नानेन शुद्धिर्नतु चन्दनेन।
मानेन तृप्तिर्नतु भोजनेन, ज्ञानेन मुक्तिर्नतु मंडनेन॥

—चाणक्य

दान देनेसे ही हाथकी शोभा बढ़ती है, गहनोंसे नहीं; स्नान करनेसे शुद्धि होती है, चन्दन लगानेसे नहीं; आदर-सम्मान मिलनेसे तृप्ति होती है, केवल भोजनसे नहीं; ज्ञानसे मुक्ति होती है, वाह्य उपकरणोंसे नहीं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गीतांजलि

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

बंगला मूल

१२५

आमार ए छेडेके तार
सकल अलंकार,
तोमारं काछे राखे नि आर
साजेर अहंकार।
अलंकार ये माझे पड़े
मिलनेते आडाल करें,
तौमार कथा ढाके जे तार
मुखर झंकार।
तोमारा काछे खाटे ना मोर
कविर गरव करा—
महाकवि, तोमार पाये
दिते वाइ ये धरा।
जीवन लये यतन करि
यदि सरल बाँशि गडि,
आशन सुरे दिवे मरि
सकल छिद्र तार।

हिन्दी अनुवाद

१२५

मेरे इस गीतने छोड़ हैं अपने
सारे अलंकार,
तुम्हारे पास न रखा उसने
सजनेका अहंकार।
अलंकार तो बीचमें आकर
बाधा बनते मिलनेमें,
तुम्हारी बोली को ढकती है उनकी
मुखर झंकार।
तुम्हारे पास न चलेगा मेरा
कवि होनेका गर्व करना—
महाकवि, तुम्हारे चरणोंमें
चाहता निछावर होना।
जीवनको ले बड़ यत्नसे
यदि सरल वंशी बना लूं प्रभु,
तो अपने ही सुरसे भर देना
उसके सारे रन्ध्रोंको प्रभु।

—अनु० माधवप्रसाद गोयनका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हमारे पास हैं लुभावने
कपड़े
आपके पास है आकर्षक व्यक्तित्व
जी! हाँ! कपड़ेकी इतनी किस्में कि
हर व्यक्ति अपना मनपसंद
कपड़ा चुन सके
सबके लिए : खास तौरसे आपके लिए

J
JIYAJEE
FABRICS

जियाजी
टेरीन सूटिंग शर्टिंग कॉटन शर्टिंग
प्रिंट्स
निर्माता—
जियाजीराव कॉटन मिल्स लिमिटेड
बिरलानगर, ग्वालियर (म०प्र०)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैं धो दूं—

'मैया देख, इसके मुखमें गोबर लगा है।' गोपी मैयाके पास उलाहना देने आयी है। बहुत धूम की है श्यामसुन्दरने उसके यहाँ और स्वयं उसके कपोलपर गोबर लगाकर भाग आये हैं। अब वह आयी तो पहिले ही बोल पड़े—'तू इसे मार लगा।'

'लगा है तो लगा रहने दे !' गोपी उलाहना देना भूल गयी इस चतुर चूड़ामणिकी बात सुनकर। यह है तो नन्हा; किन्तु कैसी बात बनाता है। हँसकर बोली—'मेरे मुखमें लगा है। तेरे मुखमें तो लगा नहीं है।'

'बुरा-बुरा लगता है।' मैयासे बोले—'मैया, इसका मुख बुरा लगता है न ? गोबर कोई मुखमें लगाता है।'

'तेरे मुखमें लगे तो बुरा नहीं लगेगा।' वह तो सचमुच सोचने लगी है—कन्हाईके मुखमें, कपोल पर लगा सके वह तो इसका यह भुवन मनोहर मुख कैसा दीखेगा। वैसे उसने अञ्चलसे मुख पोंछ दिया; किन्तु सूखा गोबर कहीं ऐसे छूटता है।

'मैं धो दूँ ?' बड़े भोलेपनसे पूछा।

'तू रहने दे।' वह डरी, पता नहीं यह ऊधमी यहाँ भी व्रजेश्वरीके सम्मुख ही क्या ऊधम करे।

'धो दे लाल !' मैयाने अनुमति दे दी।

'तू बैठ !' कन्हाई ठीक कहता है। यह नन्हा इस खड़ी गोपी का मुख कैसे धो सकता है। 'बैठी रह, मैं धोता हूँ।'

कन्हाई तो एक ओर दौड़ गया। मैया और गोपीको भी लगा कि वह पानी लेने गया है; किन्तु पानी लावेगा कैसे ? इससे न लोटा उठता न दूसरा कोई बर्तन। केवल छोटी कटोरी उठा सकता है यह अभी।

कन्हाई गया तो पानी ही लेने था और कटोरी मिल जाती तो वह उसीमें पानी भर लाता। यह दूसरी बात है कि पूरी कटोरी पानी गोपीके मुखपर डालता या केवल हाथ भिगाकर मुख पोंछता, यह कहा नहीं जा सकता; किन्तु कटोरी तो वहाँ थी नहीं और लोटेभर पानी नन्दनन्दन उठा नहीं सकता। इसने लोटेमें हाथ लगाया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैया और गोपी भी कुछ समझें, मना करें तब तक तो कन्हाई गोपीके सामने आया और इसने उसके मुखपर मुखके पानीकी धार मार दी।

'अरे, अरे' गोपी हड़बड़ा कर उठ खड़ी हुई।

'तू उठी क्यों ?' कन्हाई अब झगड़ेगा—'बैठ, मैं गोबर धो दूं।'

'अब तू अपना धोना रहने दे।' यह मैया भी क्यों मना कर रही है ? हाथसे मलकर एक बार और ऐसे पानी क्यों नहीं डालने देती। इतने में तो गोबर धुल जायगा ?

—•—

कर्तव्य—

वाराणसीमें दशाश्वमेध घाटपर एक वृद्ध स्नान करने गंगामें उतरे। पैर फिसला और वे गंगामें डूबने लगे। घाटके ऊपरसे एक युवक तुरन्त गंगामें कूद गया। वृद्धको वह बचाकर बाहर ले आया।

वृद्धने उस युवकको कुछ रुपये देने चाहे; किन्तु युवकने अस्वीकार कर दिया। जब वृद्धका बहुत आग्रह भी सफल नहीं हुआ तो उन्होंने युवकसे कहा—'मेरे योग्य कोई काम हो तो कलकत्ता आनेपर मुझसे मिल लेना। मैं यथाशक्य सहायता करूंगा।'

वृद्धने अपना पता दे दिया। वे बंगाली के मासिक पत्र 'प्रवासी' के सम्पादक स्व० श्रीरामानन्द चट्टोपाध्याय थे।

कुछ महीने पीछे वह युवक कलकत्ता पहुँचा। 'प्रवासी' कार्यालयमें चट्टोपाध्यायजी के सम्मुख उसने अपनी कुछ कवितायें रखा—'इनको आप अपने पत्रमें स्थान दें।'

कविताओंको पढ़कर उन वृद्ध विद्वानने कहा—'एक बात कहूं ?'

'कहिए।'

'मेरा निजी जीवन पृथक है और सम्पादक का कर्तव्य पृथक। अपने पाठकोंके साथ मैं ईमानदार रहना चाहता हूँ।' उन्होंने कहा—'इन कविताओं को मैं छाप नहीं सकूंगा। आपने मुझे गंगामें डूबनेसे बचाया है। आप चाहें तो मैं अभी आपके साथ चलता हूँ। आप मुझे गंगामें धक्का दे सकते हैं।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राम-कृष्ण परमहंसका बाल्यकाल

एस० अतिबल

हर जीवनमें बचपन एक बार अवश्य आता है। और हर बचपन अपने लिए, जगके लिए कुछ न कुछ स्मृति-स्वरूप छोड़ जाता है। इसी कड़ीका एक आदर एवं श्रद्धाके साथ दुहराया जाने वाला नाम है—गदाधर वंद्योपाध्याय।

एक बार खुदीराम वंद्योपाध्याय गया गये। खुदीरामको रातमें सपना आया, उन्होंने देखा—चार हाथों वाला एक आदमी शंख, चक्र, गदा और कमलका फूल लिए खड़ा है। उस नीले वर्ण वाले पुरुषकी गर्दनसे कुछ नीचे मणिकी चमक है। पुरुषने मुस्कराते हुए कहा—'हे ब्राह्मण देव ! मैं तुम्हारा पुत्र बनना चाहता हूँ।'

खुदीरामने खुली आँखोंसे चारों ओर देखना शुरू किया, कुछ भी नहीं था, बस खालीपन और आखिरी पहरकी कुलबुलाहट। हवाकी मादकता वातावरणमें भरती जा रही थी। खुदीराम बैठकर सपनेको दुहराने लगे। उनको लगा कोई प्रिय चीज उनकी हथेलियों पर अनजाने ही रखदी गयी। उनके मनमें बात आयी कि भगवान्ने ही मेरे यहाँ पुत्र रूप में पैदा होनेकी सूचना दी है।

खुदीराम प्रसन्न मनसे घर लौट आये। पत्नीको सपनेकी जानकारी दी। पत्नीने अपना अनुभव कहना शुरू किया—'मैं दो-तीन सहेलियों सहित शिवजीके मन्दिर गयी थी। जब पूजा करके निकली तो मालूम हुआ कि सुगन्धित हवा मन्दिरसे निकल-कर मुँह और नाककी राह मेरे पेटमें घुस गयी।'

इसके बाद नवें महीनेमें १७ फरवरी सन् १८३६ को बङ्गाल प्रान्तमें कुमारपुकु[र] नामक गाँवमें खुदीराम वंद्योपाध्यायको पुत्र-रत्नकी प्राप्ति हुई। पति-पत्नीका जीव[न] खुशियोंसे भर गया ; मनचाही वस्तु प्राप्त हो जाय फिर दुखका ठौर-ठिक[ाना] कहाँ ?

घरका वातावरण पूरी तरहसे धार्मिक था। पति-पत्नी भगवान्के परम भक्त थे। पिता खुदीराम वंद्योपाध्यायको घरके काम-काजसे अवकाश मिलता तो आध्या[त्मिक] पुस्तकोंका अध्ययन करते। अपनी पत्नीको भी भगवान्के चरित्रोंको सुनाते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समयके कदम बढ़ते रहे। 'होनहार बिरवानके होत चीकने पात' के अनुसार बालक गदाधर चार वर्षकी अवस्थामें दूसरे बालकोंसे भिन्न लगने लगे। एक समय आप चार वर्षकी आयुमें ही समाधिस्थ हो गये। माँ-बाप आश्चर्यमें पड़ गये, पास-पड़ोसमें चर्चा होने लगी। पिता खुदीरामको सपनेका स्मरण हो आया। गदाधर पाँच वर्षके थे। एक दिन अपने घरमें सोये थे। देर तक सोते रहे तो माताजी चिंतित हो उठीं। बेटेको जगाने कमरेमें गयीं तो बेटेको अनुपस्थित पाकर हैरान हो गयीं। दोबारा गौरसे देखा तो खटिये पर दूसरा बालक ही सोया था। माँको आश्चर्य हुआ कि दूसरा बालक कहाँसे और क्यों आ गया। घरका दरवाजा भी बन्द था। उस बालक को माताजीने जगाया नहीं। घबड़ा कर बालकके पिता तक गयीं और कहा—'गदाधर चारपाई पर नहीं, उसकी जगह एक अपरिचित बालक सोया है।'

पतिने आकर देखा, उनका गदाधार ही सोया है, दूसरा बालक नहीं। खुदीरामने पत्नीसे कहा—'तुम्हें भ्रम हो गया होगा। माताजीने अच्छी तरह देखा था, उन्हें अपने भ्रम पर विश्वास नहीं हुआ।'

बालक गदाधरका स्वभाव अत्यन्त विनम्र था। उनके स्वरका आकर्षण आस-पासके लोगोंको बांधे रहता। ग्रामीण जन गदाधरको स्नेहिल दृष्टिसे देखते। हर कोई चाहता अपने निकट रखना, उनके निकट रहना। परिणाम स्वरूप जो भी कहता उसीके साथ हो लेते, उसके घर जाते, घण्टों रहते। यदि कोई कुछ खिला देता तो बिना संकोच खा लेते। लोग आपके स्वरकी मधुरताके लिए लालायित रहते।

गदाधर संगी-साथियों सहित दूर-दूर तक बाग-बगीचोंमें निकल जाते। साथियोंके साथ कृष्ण-लीलाएँ करते। मूर्तियोंकी स्थापना करते, पूजा करते। यह सब खेलमें होता, परन्तु अप्रत्यक्षमें अन्तरकी विवशता होती। उनका मन रात-दिन मूर्तियोंमें ही लगा रहता। उन्हें स्वयं मूर्तियाँ बनानी आती थीं। कृष्ण, राम, काली उनके प्रिय आराध्य थे। भीड़के बीच रहकर भीड़से कटे हुए बालक गदाधर अपनी खोजमें लगे रहे। उनका लक्ष्य वह नहीं था जो माता-पिताने सोच रखा था, वरन् वह जो उनके अन्तरमें करवटें ले रहा था, सबसे भिन्न। बालकको किसीसे न तो बैर था, न किसीके प्रति दुर्भावना। वह अपनेमें खोये रहते। ईश्वरके प्रति समर्पण गाढ़ा होता गया। गीतामें कहा गया है—

> अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
> विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

(अध्याय: १८, श्लोक: ५३)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खुदीरामके गाँवके पाससे एक सड़क जगन्नाथपुरीको जाती थी। उन दिनों आवागमनकी विशेष सुविधायें नहीं थीं। अधिकतर लोग पैदल ही आते-जाते थे। गाँवमें यात्रियोंके विश्रामके लिए धर्मशाला वनी हुई थी। प्राय: प्रतिदिन कुछ यात्री धर्मशालामें ठहरते। गदाधर भी सायंकाल वहाँ पहुँचते। विश्राम करने वाले यात्रियोंकी यथाशक्ति सचा करते। यह क्रम विना विरामके चलता रहा। बालकका यह व्यवहार लोगोंको अजीव सा लगता। माता-पिता इसे 'हरि इच्छा' समझ व्यवधान नहीं डालते।

एक दिन कुछ साधु धर्मशालामें ठहरे और गदाधर उनकी सेवामें जुट गये। साधु भोजन वनाकर खाने लगे तो बालक गदाधरको भी निमन्त्रित किये। गदाधर बोले—'आप लोगोंका वनाया अन्न खानेके पहले मैं भी साधु वन जाऊँ तभी खा सकता हूं।' इतना कहकर उन्होंने अपनी धोतीको फाड़कर दो टुकड़ेमें कर दिया और धोतीको साधुओंकी तरह पहन लिया। फिर साधुओंका दिया भोजन स्वीकार किया। घर आकर आधी धोती माताजीको देकर कहा—'मैं आधी धोतीसे काम चला लेता हूं, आधी आप रख लीजिये।'

जव माताजीने भोजनके लिए कहा तव गदाधरने कहा—'आज साधुओंने मुझे खिला दिया है अतः उन्हींकी तरह मैं भी एक ही वार खाऊँगा।'

और इसके वाद अक्षरारम्भ हुआ ग्राम-पाठशालासे। दिन वीतते गये, जीवनमें एकके वाद एक घुमाव आते रहे। उनका भगवान्‌की ओर रुझान कालांतर में प्रगाढ़ हो गया। बालक गदाधर वंद्योपाध्याय जगप्रसिद्ध स्वामी रामकृष्ण परमहंस कहलाये। स्वामीजी आज हमारे बीच नहीं किन्तु उनका नाम हमारी राहका अमित प्रकाश है।

—+—

न मैं बुरा हूं न अच्छा हूं
तुमने बनाया जो वहीं हूं मैं।
और भी बनाओ वह वनजाऊँ
यन्त्र ही तुम्हारा, बुरा-अच्छा क्या?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सेन्चुरीकी नयी देन

को जी कॉ ट

कॉ ट न श र्टिं ग

सुन्दर सुहावने चैक्समें उपलब्ध है।

पहननेमें ऊनी कपड़े-सा आनन्द मिलता है।

निर्माता—

दि सेन्चुरी स्पिनिंग एण्ड मैन्युफैक्चरिंग कं० लि०

'सेन्चुरी भवन' : डॉ. एनी बीसेण्ट रोड, वरली

बम्बई—४०००२५

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अहंकार

—स्व० श्रीहरिकिशनदास अग्रवाल

मनुष्यके अन्दर पहले अहंकार होता है फिर उसमें वासना-कामना व तृष्णादि जन्मती है। जब तक मनुष्यका शरीरके साथ तादात्म्य नहीं है, तब तक काम, क्रोधादि दुर्व्यसन उसके पास नहीं फटकते। सारे दुर्व्यसनोंका मूल अहंकार ही है। अगर हम इसे भली प्रकार समझ लें तो इन सब व्यसनोंकी जड़ ही कट जाये।

पहले मनुष्यके अन्दर परिच्छिन्न भाव, शरीरके अन्दरमें बुद्धि अर्थात् 'मैं ही करता हूँ'—'खाता हूं,' 'पीता हूं,' 'सुखी दुःखी' होता हूं, 'जनता-मरता हूं' ये भावनाएँ उठ खड़ी होती हैं। किन्तु जहाँ शरीरके साथ तादात्म्य नहीं रह जाता हम शरीरको भी वैसे ही देखते हैं जैसे कि अन्य शरीरोंको, तो शरीरके अन्दर 'मै' बुद्धि नहीं रह जाती।

मनुष्य यदि विशाल ब्रह्मांडमें अपने छोटे-से घरकी कल्पना करे, उसे ही मैं व मेरा मानना शुरू कर दे तो यह उसकी भूल होगी।

जिस प्रकार फूलका एक गमला यदि यह समझना शुरू कर दे कि गमलेकी मिट्टी-पानी-तेजवायु और आकाश जिसमें कि वह पनपता है, वह भिन्न है, तो यह उसकी भूल हो जायगी। गमलेका आकाश-वायु व जलत्यादि बाहरके व्यापक तत्त्वोंसे भिन्न नहीं। वे सब एक ही हैं। किन्तु हमीं यदि उसके अन्दर कटौती कर लेते हैं तो यह हमारे अन्दर परिच्छिन्न भाव अहंकारके कारण ही है।

जीव-स्वरूप से ब्रह्म है किन्तु उसने ब्रह्मसे तादात्म्य न जोड़ शरीरसे तादात्म्य कर लिया, उसे ही मैं मान लिया। शरीरको मैं मानने वालेका जन्म भी होगा और मृत्यु भी, वह सुखी-दुःखी भी होगा।

सुख-दुःख, जन्म-मरण, सभी शरीरके अन्दर परिच्छिन्न मैं बुद्धिके कारण ही है। अगर शरीरको ब्रह्माण्डका एक अंग मान लिया जाये अर्थात् परमात्माकी प्रकृतिका कार्य मान लिया जाये तो इसके ऊपर जो हमने उल्टा कब्जा कर लिया है, वह छूट जायगा और जिसकी वस्तु है उसीकी हो जायगी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिस प्रकार वल्व यदि यह समझे कि वही बिजलीके प्रकाशका कारण है, उसके होनेसे ही बिजलीका प्रकाश है, अगर वह न हो तो बिजली भी नहीं होगी, तो यह उसकी भूल ही होगी। क्योंकि बिजली तो वल्वके पहले व वल्वके टूट जाने पर भी रहती है। वल्वके नाशसे बिजलीका नाश नहीं होता अथवा तार कट जानेसे बिजली नहीं कटती, बिजलीका अस्तित्व अपना ही है। किन्तु वल्वके अन्दर प्रकाश तो बिजलीका है किन्तु वल्व उसे ही मैं माने तो यह उसकी भूल हो जायगी।

वल्व एक माध्यम है बिजलीके प्रकाशका। यह सत्य है कि बिजलीका अस्तित्व बिना वल्वके नहीं होता है किन्तु वल्व बिना बिजलीके किसी कामका नहीं। बिजलीकी तरह हमारे अन्दर परमात्माका ही प्रकाश है, शरीर विकासका एक माध्यम है किन्तु शरीर जड़ है जो कि न स्वयं को जानता है, न दूसरेको। इसके अन्दर जानना परमात्माके ही कारण है, किन्तु हम इसी जाननेको देहमें परिमित कर लेते हैं। जानना बिजलीकी तरह है, वह इन्द्रियोंके द्वारा विकसित होता है; किन्तु देखनेका पता हमें निज ज्ञानसे ही चलता है। अगर देखनेके साथ ज्ञान नहीं हो तो सुनना, अनसुना व देखना अनदेखा हो जायगा। यहाँ तक कि पाँवमें कांटा जो लगता है, वहभी ज्ञानका सूचक है, ज्ञानसे ही पता चलता है कि पाँवमें कांटा लगा।

भूल यह लग गयी है कि हम इन्द्रियोंको ही करण कारण मानने लगते हैं। इन्द्रियाँ करण तो है; पर कारण नहीं। कारण सबका ज्ञान ही है। निज ज्ञानसे ही मनुष्यको इन्द्रियों द्वारा मान होता है, ज्ञान स्थिर व निष्क्रिय है, ज्ञान अपना स्वरूप है किन्तु परिच्छिन्न अहंकारके कारण इन्द्रिय जन्य क्रियाको ही हम ज्ञान मानते हैं। जैसे कि टांगें चलती हैं, आँखें देखती हैं, कान सुनते हैं, पर हम समझते हैं कि हमीं चलते-देखते हैं। देखना और सुनना सब उस ज्ञानसे ही है; किन्तु ज्ञानके आवृत्त हो जानेके कारण हमें देह व इन्द्रिय ही कर्त्ताके रूपमें दिखायी देती हैं। जिस प्रकार वृक्षका अस्तित्व जड़ें हैं किन्तु जड़ें हमें दिखायी नहीं देतीं। हमें वृक्षके टहनी-पत्ते-फल-फूलादि जो कि भूमिके ऊपरी भागमें हैं, वे तो दिखायी देते हैं पर जड़ें नहीं, किन्तु यदि वृक्षका मूलोच्छेद कर दिया जाए तो पत्ते व टहनियाँ इत्यादि सब सूख जाँयगी। वृक्षका होना उसकी जड़ोंके ही कारण है किन्तु साधारण मनुष्यको वृक्ष दिखायी देता है, जड़ें नहीं और ज्ञानीको वृक्षका कारण जड़ें भी दिखायी देती हैं।

इसी प्रकार हमारा मूल परमात्मा है, उसीके कारण हमारा होना है, किन्तु हमारा अहङ्कार परमात्माको ढंक लेता है। हम अहंकार करते तो हैं बड़ा बननेके लिए किन्तु उससे तुच्छ कोई अन्य वस्तु नहीं। जो मनुष्य अहंकारी होता है, उसको हृदयसे कोई

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं चाहता। किन्तु जो मनुष्य निरहंकारी होता है, उसे सब चाहते हैं। निरहंकार होना निरावृत्त होना है और अहंकारी बनना अपने ऊपर आवरण लादना है। सब दुःखोंका, जन्म-मरणका परिच्छिन्न व काम-क्रोध इत्यादिका कारण केवल अहंकार ही है। जहाँ अहंकार है वहाँ परमात्मा नहीं, व जहाँ अहंकार नहीं वहाँ परमात्मा ही है, हम नहीं।

हमारे परिच्छिन्न मैं को ही अहंकार कहते हैं, अहंकार एक मानसिक कल्पना है, अहंकार ब्रह्मसे विपरीत भावना है।

अहंकारको दूर करनेके लिए शरणागति ही एक अटूट उपाय है। जो मनुष्य पूरी तरहसे परमात्माकी शरण हो उसे ही करण-कारण मानता है, अपनेको नहीं, उसे परमात्मा जिस हालतमें रखता है उसीमें वह प्रसन्न है। वह अपने कर्तापनकी छाप नहीं लगाता। अहंकारी मनुष्य यह समझता है कि मैं करता हूँ और जो कर्ता बनेगा, उसे भोक्ता भी बनना पड़ेगा।

अहंकार तुच्छ बुद्धि परिच्छिन्नता है, अपने स्वरूप पर आवरण है, अहंकार अज्ञानताके कारण ही होता है, जहाँ, ज्ञान हो जाता है, जहाँ अहंकार नहीं रहता, वहाँ केवल परमात्मा ही रह जाता है।

—:o:—

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमानं
स्वकर्म्म सूत्र ग्रथितो हि लोकः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सहनशीलता

बंगालमें संस्कृतके बहुत बड़े विद्वान् हो गये हैं श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती। उनके बहुतसे ग्रन्थ हैं।

एक बार पण्डितोंके साथ उनका शास्त्रार्थ हो रहा था। पण्डित लोग चक्रवर्तीजी के तर्कोंका उत्तर नहीं दे पारहे थे।

तुम जानते हो कि बहसमें जो हारने लगता है, वही गाली बकता या झगड़ा करता है। जब पण्डित लोग हारने लगे तो एकने सूँघनेके तम्बाकूकी डिबिया चक्रवर्ती महोदयके मुख पर झल्ला कर फेंक दी।

बिना झल्लाये झटपट चक्रवर्तीजीने तम्बाकू मुख परसे पोंछ दिया और हँस कर बोले—'यह तो कुछ क्षणके लिए प्रसंगसे बाहरकी बात हो गयी थी। अब अपने प्रसंग पर आ जाना चाहिए।'

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीकी इस सहनशीलताको देखकर पण्डित लज्जित हो गये। उन्होंने पराजय स्वीकार कर ली।

—:o:—

धन से लेना है धर्म से नहीं

पुरानी बात है। अरबमें अब्दुल्ला नामके एक सन्त प्रसिद्ध हो गये हैं। बहुत सादा गृहस्थी जीवन वे बिताते थे।

एक दिन पुत्रके साथ वे कपड़ा खरीदने निकले। एक दूकान पर जाकर कपड़ा पसन्द किया; किन्तु भाव पूछने पर मूल्य अधिक लगा। दूकानदारसे बोले—'सेठ! भाव कुछ कम करो तो अच्छा।'

दूकानदार उन्हें पहिचानता नहीं था। उसने कह दिया—'लेना हो तो लो, मूल्य एक पैसा भी कम नहीं होगा।'

यह बात पड़ोसी दूकानदार देख-सुन रहा था। वह बोला—'अरे भले आदमी! तुम आदमी तो पहिचानो! ये तो सन्त अब्दुल्ला हैं। इनसे कहीं मोल-भाव किया जाता है।'

दूकानदार सन्तके चरणोंमें झुक गया—'हुजूर माफ करें! मैं आपको पहिचानता नहीं था। मुझसे भूल हुई।'

'बेटा चलो! हम यहाँ दीनार (पैसे) से कपड़ा लेने आये थे, दीन (धर्म) से नहीं।' अब्दुल्ला फिर वहाँ नहीं रुके। वे कह रहे थे—'धर्मात्मा मानकर कोई हमको सस्ता दे, यह तो धर्म बेचना है।'

—:o:—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नन्द ग्राम का प्रातःकाल

अनुराग-पुर प्राची दिक् से उमड़ा
डूबी धरणी-अम्बर ।
सिन्दूरारुण गणपति-सुकर्ण हिलते दीखे
दो क्षण निर्झर ।

द्विज वृन्द सजाये अर्घ्याञ्जलि,
गम्भीर गूँजता साम-गान,
ले चलीं धूम्र की कुण्डलियाँ—
दिवि को धरणी का दिव्य-दान ।

गोष्ठों में गूँजा 'हम्बा' रव,
भवनों से झङ्कृति-ध्वनि आयी ।
उत्सुकता-वन विहँगावलियाँ
चञ्चल वितान नभ मँडरायी ।

ऊपर यह 'हूप हूप' करता,
घिर आया है उत्साह सदल,
नीचे दौड़े सुन्दर बालक,
आगे उनके बछड़े चञ्चल ।

रवि-बिम्ब क्षितिज पर उठा सही—
रह गयीं रश्मियाँ सकुच मन्द ;
व्रजराज-पौरि पर झूम घूम
क्योंकि बढ़ आया कृष्ण-चन्द्र ।

यह तडिदाम्बर घनश्याम अङ्ग,
कुण्डल रवि, आनन इन्दु ओज ;
(फलतः) छज्जों पर फूलीं कुमुदिनियाँ,
पथ-पर प्रफुल्ल शिशु—नव सरोज ।

'चक्र'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सहनशीलता

बंगालमें संस्कृतके बहुत बड़े विद्वान् हो गये हैं श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती। उनके बहुतसे ग्रन्थ हैं।

एक बार पण्डितोंके साथ उनका शास्त्रार्थ हो रहा था। पण्डित लोग चक्रवर्तीजी के तर्कोंका उत्तर नहीं दे पारहे थे।

तुम जानते हो कि बहसमें जो हारने लगता है, वही गाली बकता या झगड़ा करता है। जब पण्डित लोग हारने लगे तो एकने सूँघनेके तम्बाकूकी डिबिया चक्रवर्ती महोदयके मुख पर झल्ला कर फेंक दी।

बिना झल्लाये झटपट चक्रवर्तीजीने तम्बाकू मुख परसे पोंछ दिया और हँस कर बोले—'यह तो कुछ क्षणके लिए प्रसंगसे बाहरकी बात हो गयी थी। अब अपने प्रसंग पर आ जाना चाहिए।'

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीकी इस सहनशीलताको देखकर पण्डित लज्जित हो गये। उन्होंने पराजय स्वीकार कर ली।

—:o:—

धन से लेना है धर्म से नहीं

पुरानी बात है। अरबमें अब्दुल्ला नामके एक सन्त प्रसिद्ध हो गये हैं। बहुत सादा गृहस्थी जीवन वे बिताते थे।

एक दिन पुत्रके साथ वे कपड़ा खरीदने निकले। एक दूकान पर जाकर कपड़ा पसन्द किया; किन्तु भाव पूछने पर मूल्य अधिक लगा। दूकानदारसे बोले—'सेठ! भाव कुछ कम करो तो अच्छा।'

दूकानदार उन्हें पहिचानता नहीं था। उसने कह दिया—'लेना हो तो लो, मूल्य एक पैसा भी कम नहीं होगा।'

यह बात पड़ोसी दूकानदार देख-सुन रहा था। वह बोला—'अरे भले आदमी! तुम आदमी तो पहिचानो! ये तो सन्त अब्दुल्ला हैं। इनसे कहीं मोल-भाव किया जाता है।'

दूकानदार सन्तके चरणोंमें झुक गया—'हुजूर माफ करें! मैं आपको पहिचानता नहीं था। मुझसे भूल हुई।'

'बेटा चलो! हम यहाँ दीनार (पैसे) से कपड़ा लेने आये थे, दीन (धर्म) से नहीं।' अब्दुल्ला फिर वहाँ नहीं रुके। वे कह रहे थे—'धर्मात्मा मानकर कोई हमको सस्ता दे, यह तो धर्म बेचना है।'

—:o:—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नन्द ग्राम का प्रातःकाल

अनुराग-पुर प्राची दिक् से उमड़ा
डूबी धरणी-अम्बर ।
सिन्दूरारुण गणपति-सुकर्ण हिलते दीखे
दो क्षण निर्झर ।

द्विज वृन्द सजाये अर्घ्याञ्जलि,
गम्भीर गूँजता साम-गान,
लें चलीं धूम्र की कुण्डलियाँ—
दिवि को धरणी का दिव्य-दान ।

गोष्ठों में गूँजा 'हम्बा' रव,
भवनों से झङ्कृति-ध्वनि आयी ।
उत्सुकता-वन विहँगावलियाँ
चञ्चल वितान नभ मँडरायी ।

ऊपर यह 'हूप हूप' करता,
घिर आया है उत्साह सदल,
नीचे दौड़ें सुन्दर बालक,
आगे उनके बछड़ें चञ्चल ।

रवि-बिम्ब क्षितिज पर उठा सही—
रह गयीं रश्मियाँ सकुच मन्द ;
व्रजराज-पौरि पर झूम घूम
क्योंकि बढ़ आया कृष्ण-चन्द्र ।

यह तडिदाम्वर घनश्याम अङ्ग,
कुण्डल रवि, आनन इन्दु ओज ;
(फलतः) छज्जों पर फूलीं कुमुदिनियाँ,
पथ-पर प्रफुल्ल शिशु—नव सरोज ।

'चक्र'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निबन्ध-प्रतियोगिता

इस वर्ष भी प्रतिवर्षकी भांति गीता एवं मानस-निबन्ध-प्रतियोगिता रखी गयी है।

विषय—

वयस्कोंके लिए—गीता अध्याय २ श्लोक ३९ से अध्यायके अन्त तक। बालकों के (१६ वर्ष तककी आयुके) लिए—श्रीरामचरितमानस सुन्दरकाण्डके प्रारम्भसे दोहा ३७ तक।

आकार—

प्रौढ़ प्रतियोगियोंका निबन्ध एक हजारसे बारह सौ शब्दों तकका। बालकोंका निबन्ध सात सौ से एक हजार शब्दों तक का।

सभी निबन्ध कागजके एक ही ओर हाशिया छोड़कर स्पष्टाक्षरोंमें लिखे या टाइप किये होने चाहिए। टाइपकी पहली ही प्रति आनी चाहिए।

पुरस्कार—

प्रौढ़ प्रतियोगियोंके प्रथम तीन घोषित निबन्धों पर डेढ़ सौ से ढाई सौ रुपये नकद या पुस्तकें अथवा दोनों।

बालकोंके प्रथम तीन घोषित निबन्धों पर ५०/- से १००/- तक।

समय—

सभी निबन्ध 'श्रीकृष्ण-सन्देश' कार्यालयमें १५ नवम्बर तक अवश्य आजाने चाहिए।

विशेष—

निर्णायकोंका निर्णय अन्तिम होगा। उसके सम्बन्धमें कोई पत्र व्यवहार नहीं किया जायगा।

पुरस्कृत निबन्धों पर 'श्रीकृष्ण-सन्देश' कार्यालयका स्वत्व होगा। वे सुविधानुसार पत्रमें प्रकाशित किये जासकते हैं।

अपुरस्कृत निबन्ध पोस्टेज भेजकर लेखक तीन महीनेके भीतर (पुरस्कार तिथिसे) मँगायें तो लौटा दिये जायंगे।

निर्णय तिथि—

मार्ग शीर्ष शु० ११ (गीता जयन्ती) १८ दिसम्बर १९८० ई०।

निबन्ध भेजनेका पता—
सम्पादक 'श्रीकृष्ण-सन्देश'
श्रीकृष्ण जन्मस्थान
मथुरा—२८१००१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रभु आवत

(गतांकसे आगे)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३५. कैकय-नरेश--

'कोई नहीं जानता किससे क्या प्रमाद कब हो जायगा' कैकय-नरेश महाराज अश्वजित अत्यधिक चिन्तित थे—'किसने आशाकी थी कि तुम्हारी बहिन ऐसी भयंकर भूल कर बैठेगी। रूपमालिनी* जो अपने शैशवसे अत्यन्त उदार, मनस्विनी रही, वह अकस्मात् इतनी कृपण एवं स्वार्थपर हो जायगी !'

'मेरी भगिनी सदासे स्वाभिमानिनी रही।' युधाजितने पिताको पता नहीं कितनी बार ये बातें कही हैं—'मन्थराकी मूर्खता ; किन्तु उस कुब्जा दासीने बहिनके इस दुर्बल स्थानको लक्ष्य बना लिया और अब तो ये बीते दिनोंकी बातें हैं। अयोध्यामें अब उनसी दुखिया कोई नहीं। कठिनाई यह है कि वे अयोध्यासे यहाँ आना भी स्वीकार नहीं करतीं।'

'अपने अनुजके साथ भरत यहाँ आये।' महाराज कह रहे थे—'तुमने देखा है, अहर्निशि वे अपने अग्रज श्रीरामके ही चिन्तनमें लगे रहते थे। श्रीरामका गुणगान करते वे थकते नहीं थे। अपने पुत्रको तो उसने पहिचाना होता !'

'भरतने मातासे बोलना तक त्याग दिया है।' युधाजितके नेत्र भर आये बहिनकी व्यथाका स्मरण करके—'मुझे आशा नहीं कि वे जीवन में कभी अब माताका सम्मान कर सकेंगे।'

'रघुवंशके भूषण हैं भरत ! उन्होंने जो कठोर व्रत ले रखा है—अपने यहाँ आनेवाले मुनिगण उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। वह मूर्ख है—वज्रमूर्ख जो रघुवंशके कुमारोंमें भेद देखनेकी आशा करता हो।' महाराजके नेत्र भर आये—'पुत्रीकी चिन्ता मुझे नहीं है। श्रीरामने उसका उस दिन भी आदर किया, जब वह उन्हें वन भेज रही थी। वह राजमातासे कम सम्मानिता नहीं रहेगी। राम—वे शील एवं मर्यादाकी मूर्ति—उनके मनमें माता-विमाताका भेद न आया, न आ सकता।'

'आज उनके वनवासकी अवधिका अन्तिम दिवस है।' युधाजितने दो क्षण रूककर जैसे अपने आपसे कहा।

'यही बात है जो मेरे हृदयको उन्मथित कर रही है। तुम भरतका निश्चय जानते हो, श्रीराम लंकामें त्रिभुवन जयी दशग्रीवसे संग्राम-रत हैं। यह समाचार हमें अभी ही मिला है। वे विजयी तो होंगे ही—हों भी चुके हों·······कितनी दूर है अयोध्यासे लंका।' महाराजने दीर्घश्वास ली—'यदि कल सूर्यास्त तक अयोध्या वे नहीं आजाते··········।' साहस नहीं हुआ कि वह भयंकर अनर्थकी बात मुखसे कह सकें।

---

* कैकेयी जी का पितृ-गृहका वास्तविक नाम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'हम विवश हैं तात !' युधाजितका स्वर अत्यन्त शिथिल था, 'कैकयकी सैन्य शक्ति लंका या अयोध्याकी तुलनामें नगण्य है ; किन्तु हमारे शूर प्राणोत्सर्ग करना जानते हैं। समाचार मिलते ही मुझे सम्पूर्ण तरुणोंके साथ प्रस्थान कर देना चाहिये था। हम वानर-रीछोंसे हीन बल नहीं थे। कुछ सहायता तो कर ही पाते श्रीरामकी, किन्तु बहिनने हमें इस योग्य भी नहीं रखा। हमारे ऊपर सभी सन्देह करते हैं। सब सोचते हैं—'युधाजितकी कूटनीति अपने मानजे भरतको सम्राट देखना चाहती थी।' हमारी सेना प्रस्थान करती—मुझे भय था कि शत्रुघ्न ही हमारा प्रतिरोध करने बढ़ आते। निषाद-राज गुह, मिथिला महाराज—वनमें सभी कोल-किरात श्रीरामके लिए प्राणार्पण करना सौभाग्य मानते हैं। हमारा कोई विश्वास नहीं करता। अपने शुभैषियोंसे संग्राम करनेकी अपेक्षा विवश बैठ रहना उत्तम था।'

'अब भी यह विवशता समाप्त कहाँ हुई है !' महाराजने नेत्र मार्जित किये—'श्रीराम सत्य सङ्कल्प हैं। वे कल अवश्य अयोध्या आ जायँगे। उनके सम्मुख धनुष उठाकर दशग्रीव दग्ध हो चुका। मेरा मन कहता है, उसकी चिताग्नि भी शान्त हो चुकी अब तक ; किन्तु अश्वजित उन अमित पराक्रम अपने आसन्न सम्राटके स्वागतके लिए तुम्हें अयोध्या भेजनेकी भी स्थितिमें नहीं। तुम पर सन्देह किया जायगा। असम्भव नहीं—भरत ही आदेश दें कि श्रीरघुनाथका राज्याभिषेक होनेसे पूर्व युधाजितको अयोध्याकी राज्य सीमामें नहीं आना चाहिए !'

'बिना हुए भी यह आदेश है, ऐसा मानकर हम चल रहे हैं।' युधाजितने अब मस्तक उठाया—'किन्तु तात ! श्रीरामके राज्याभिषेकमें युधाजित अपने उपहार अर्पित करने नहीं जायगा—अनर्थ हो जायगा ! हम पर सबको जो सन्देह है, उसे पुष्टि प्राप्त होगी कि हम उन्हें सम्राट नहीं स्वीकार करना चाहते।'

'सम्राट ! श्रीराम हमारे सम्राट हों, इससे बड़ा सौभाग्य कुछ नहीं हो सकता हमारा। हम अयोध्याके प्रजाजनोंसे कम हर्षित नहीं इस आशामें।' महाराजने कहा—'और उस समय तुम अवश्य वहाँ उपस्थित रहोगे वत्स ! श्रीराम अपने मातामह एवं मातुलको आमन्त्रित करना भूल जायँगे, कोई सम्भावना नहीं इसकी ; किन्तु कल हम उनका अयोध्यामें स्वागत करते, अपनी कन्याके प्रमादसे वञ्चित होगये इस सौभाग्यसे हम।'

चर समाचार लेने प्रथम प्रस्थान कर चुके थे अवधकी ओर और अब तो प्रतीक्षा करना था।

—:o:—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२६. दक्षिण कोसल—

आजकल जिसे हम आप छत्तीसगढ़ कहते हैं, वह दक्षिण कोसल—माता कौसल्याका पितृगृह। श्रीरामका राज्याभिषेक होना था और वे वन चले गये। कोसल-नरेशने सुना और सिर झुका लिया। एक शब्द नहीं निकला उनके मुखसे। मूर्तिकी भाँति अपने सिंहासन पर वे बैठे रह गये। उनका मुख श्वेत पड़ गया था।

'राजन्!' दूसरोंका साहस नहीं हुआ बोलनेका। कुल पुरोहितने परिस्थिति सम्हाल ली उस समय—'आप जानते हैं कि श्रीराम सामान्य राजकुमार नहीं हैं। धराका भार दूर करनेके लिए वे पधारे हैं और यह कार्य अयोध्यासे पूर्ण करना कदाचित उन्हें प्रिय नहीं होगा। भरतको आप जानते हैं और उन पर कोई सन्देह किया नहीं जा सकता।'

'मुझे चिन्ता चक्रवर्ती महाराजकी है, भरतकी है और सबसे अधिक कैकेयीकी है।' नरेशने सूखे कण्ठसे कहा था—'आप जानते हैं, मैं उसे अपनी कन्यासे कम स्नेह नहीं करता। कहींकी नहीं रही वह—भाग्यने विश्वासघात किया उसके साथ।'

कोसल-नरेशकी चिन्ता कितनी सत्य सिद्ध हुई, हम सब जानते हैं। सब कार्य इतने अकस्मात हुए कि चक्रवर्ती महाराजकी और्ध्व दैहिक क्रियामें कोई सम्मिलित होने नहीं जा सका। भरतलालके चित्रकूटसे लौट आनेके पश्चात् नरेश स्वयं कई बार अयोध्या हो आये हैं।

'श्रीराम दक्षिण कोसलके पार्श्वसे ही गये!' अत्यन्त खेद हुआ था जब यह समाचार मिला। उनके मातामहके राज्यमें कम अरण्य कहाँ हैं। वनवासके चौदह वर्ष वे यहाँ किसी काननमें व्यतीत कर लेते।

अब इन बातोंकी चर्चा क्यों की जाय। पूरे चौदह वर्ष तो यही चर्चा चलती रही है यहाँ और इन्हीं चिन्ताओंमें नरेशका शरीर जीर्ण होगया है। वे प्रचण्डकाय—अब कहाँ है उनमें वह शक्ति। उनका वलीपलित, रजत केश शरीर—अपने वार्धक्यमें भी वे तरुण लगते थे और अब जैसे जरा अकस्मात् आ गयी। पूरे चौदह वर्ष—एक पल एक कल्पके समान व्यतीत हो, चौदह वर्ष कितने भारी होंगे। श्रीराम वनमें हैं और भरत नन्दिग्राममें तप कर रहे हैं। नरेशकी चिन्ताका पार नहीं और इसीमें चतुर्दश वर्ष बीत गये। आज तो अन्तिम दिन है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'श्रीरामके लौटनेका कोई सम्वाद अभी तक नहीं आया !' दक्षिण कोसलके चर भी कुछ बता नहीं सकते थे। दक्षिणारण्यमें जहाँ तक सम्भव था, उन्होंने अपने सम्वादवाहक नियुक्त कर रखे थे; किन्तु कोई सम्वाद नहीं।

'श्रीरघुनाथ लंकामें हैं। दशग्रीवसे युद्ध चल रहा है।' अयोध्यासे यह समाचार अभी ही तो आया था; किन्तु भरतका वह निश्चय········!

'अयोध्या चलना चाहिए ?' आज नहीं, आजसे तीन दिन पूर्व ही यह प्रश्न उठा था राजसभामें और तभी निर्णय कर दिया था कुलगुरुने—'प्रतीक्षा करनी चाहिए ! श्रीरघुनाथके आ जाने पर हम चलेंगे। इस अवसर पर भरत अपने अग्रजका सोल्लास स्वागत करें। अयोध्यामें अतिथि होना उसमें व्याघात बनेगा !' केवल चर गया अयोध्या किन्तु हृदय—वह तो अद्‌भुत दशामें है। कभी अयोध्या और कभी वन।

'एक विमान गया आकाश मार्गसे ! विशाल ज्योतिर्मय विमान, जिसकी गतिके साथ मधुर संगीतके स्वर गूँजते थे !' सीमान्त प्रदेशसे चर सम्वाद लेकर आया—'विमान पर्याप्त नीचे होकर जा रहा था। वह दक्षिणसे आया और सीधे उत्तर गया है !'

'रावणके समीप कुवेरका पुष्पक विमान है !' अनुमान करनेमें समय नहीं लगा—'दशग्रीव पराजित हो गया समरमें तो विमान अब उसके विजेताकी सम्पत्ति स्वतः होगया।'

'श्रीराम अवश्य पुष्पकसे अयोध्या पहुंच रहे हैं !' दक्षिण कोसलमें आशाकी ज्योति आयी। नरेशने तत्काल चर अवधकी ओर दौड़ाया।

'हम चलेंगे ! अब हम अवश्य श्रीरामके दर्शन करेंगे अयोध्यामें !' नरेश आज उमंगमें आगये—'कल प्रातः प्रस्थान करेंगे हम और जब हम पहुंचेंगे, अवधके चारों कुमार एकत्र आ सकेंगे हमारे पास। अपने चारों दौहित्रोंको हम एक साथ अपने उपहार अर्पित करेंगे।'

दक्षिण कोसलमें प्रस्थानकी प्रस्तुति होने लगी। स्वयं नरेश उपहार सामग्रीको संचय करानेमें लग गये। अयोध्या—इस अवसर पर अयोध्या जानेका अमित उल्लास—वर्णनमें नहीं आ सकता।

—:o:—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३७. महाराज सुमित्र—

अयोध्या नरेश परम्परासे ही सम्राट रहे हैं और इस सौमित्र देशको—मगधको—तो गौरव है कि चक्रवर्ती सम्राट महाराज दशरथने इसकी राजकन्या स्वीकार की। श्रीरघुनाथ आ रहे हैं, आ रहे हैं वे पृथ्वीके ही नहीं, सबके हृदयोंके निर्विकल्प सम्राट और वे सुमित्रके दौहित्र हैं। क्या हुआ जो वे मेरी पुत्री गुणावती (सुमित्रा) के पुत्र नहीं हैं। कौशल्या भी तो मेरी पुत्री ही हैं। अब जो रघुकुलके कुमारोंमें कोई भेद देखे, वह वज्रमूर्ख होगा।

कैकय-नरेशकी कुमारीको पता नहीं कैसे भ्रम हो गया था। वेचारी कहींकी नहीं रही। अपने भ्रमका ही वह आखेट हो गयी। श्रीराम उसे बहुत सम्मान देते थे, अब भी देंगे, किन्तु अपने जिस स्वगर्भजातको सिंहासन दिलानेका लोभ उसमें जागा था, आशा नहीं कि वे भरत उसे अब जीवनमें 'माँ' कह सकेंगे।

भरतने तो पूरी आर्यजातिको धन्य कर दिया। उनके त्याग एवं उग्रतर तपकी प्रशंसा करते मुनिगण थकते नहीं हैं। भरत जैसा भाई—सृष्टिके लिए अब यह नित्य आकांक्षाका विषय हो गया।

धन्य किया मुझे मेरी पुत्रीने और मेरे दौहित्रोंने। मेरी कन्या बचपनसे गम्भीर रही है। उसे लोभने, चपलताने तो शैशवमें भी स्पर्श नहीं किया था। सुना है—अयोध्याके राजसदनकी वही प्रारम्भसे व्यवस्थापिका है।

मेरे दौहित्र—मेरे दोनों दौहित्र अनुपम हैं। लक्ष्मणने रामका अनुगमन करके केवल अपनेको, अपनी जननीको ही धन्य नहीं किया, उनके कारण तो उनके मातामह का यह कुल भी कृतार्थ होगया और कृतार्थ किया इसे वत्स शत्रुघ्नने भी। भरतका दृढ़ अनुगामी रहकर उन्होंने ही चौदह वर्षके विषमकालमें अयोध्याके वियोग-व्याकुलजनोंको सम्हाला।

जब वह दारुण समाचार मिला, मैं समझ नहीं पाता था कि क्या करूँ। कर भी क्या सकता था मैं? अयोध्याके चारों कुमार मिथिला नरेशके जामाता हैं। वे ज्ञानियोंके परमगुरु और उनके आचार्य ब्रह्मर्षिगण मुकुटमणि योगी याज्ञवल्क्यजी ही जब चित्रकूट तक जाकर कुछ नहीं कर सके, मैं कर भी क्या सकता था? प्रतीक्षा ही करनी थी मुझे। कितना दारुणकाल था यह प्रतीक्षाका?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मगध शास्त्र-निन्दित प्रदेश है। इसमें कुछ ही स्थल हैं जो तीर्थ माने जाते हैं और जहाँ ऋषि-मुनि आश्रम बनाकर तप करना स्वीकार करते हैं; किन्तु अब मगधको—विशेषतः इस सौमित्र प्रदेशको अपवित्र कहनेका साहस है किसीमें? यह अयोध्याके राजकुमारोंके मातामहका प्रदेश है।

मिथिलानरेशने तो मुझे अतिशय भाग्यवान बना दिया है। अयोध्यासे कोई मिथिला जायगा तो इस प्रदेशमें होकर ही तो जायगा? मुझे तो विना माँगे अयोध्या और मिथिला दोनोंके जनोंके सत्कारका सौभाग्य स्वतः प्राप्त हो गया है।

अब श्रीरघुनाथ कल अयोध्या लौट रहे हैं। लौट ही रहे हैं, क्योंकि भरत जैसे महातापसके निश्चयको अन्यथा करनेका साहस सृष्टिकर्ता भी करें तो उनकी यह सृष्टि टिक सकेगी?

श्रीराम कल आ रहे हैं। उनके राज्याभिषेकके समय सुमित्र उपहार तो भेजेगा ही। अब अपनी पुत्रीको यहाँ आमन्त्रित करनेका अवसर नहीं रहा। उसने पतिके साथ चितारोहण नहीं किया, महर्षि वशिष्ठकी आज्ञा और भरतका अनुरोध मान लिया, यही बहुत हुआ, पर अब वह अयोध्यासे बाहर जाना तो स्वीकार नहीं कर सकती।

मेरी पुत्री नहीं आ सकती। मैं अपने दौहित्रोंसे भी आनेका आग्रह क्यों करूँ? मेरा यह काम तो मिथिला-नरेश स्वतः करेंगे—उत्सुक होंगे करनेके लिए। अपनी पुत्रियोंको उन्हें मिथिला बुलाना तो है ही। उनकी पुत्रियाँ मिथिला जायंगी तो उन्हें लेने अयोध्याके राजकुमार नहीं जायेंगे? अन्ततः किधरसे जायंगे? मुझे तो उनके जाते और लौटते समय भी सत्कारका सुअवसर मिलना है।

जाते समय अयोध्याके कुमारोंको मैं कह दूंगा कि उन्हें यह समझकर ही मिथिलासे चलना है कि सौमित्र देशका यह वृद्ध नरेश उनका मातामह है। यह वृद्ध अब दौड़-धूप नहीं कर सकता। इसे अपने दौहित्रों तथा उनकी वधुओंका सत्कार करनेका अवसर मिलना चाहिए। वहाँ से अयोध्या पहुँचनेकी त्वरा लेकर वे आयेंगे तो वह सुनी नहीं जायगी।

मुझे केवल प्रतीक्षा करनी है कि महाराज विदेह कव अपनी कन्याओंको मिथिला बुलाते हैं।

—:o:—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३८. महाराज जनक-

'आज चतुर्दश वर्ष पूर्ण हो गये श्रीरामके वनगमनके ।' महाराजने अपने एकान्त कक्षमें मानो अपने आपसे कहा—'इसका अर्थ है कि सुरोंका संकट समाप्त होगया । श्रुतियोंकी मर्यादा सुरक्षित हो गयी । गो-ब्राह्मणोंकी विपत्ति विदा हो चुकी ।'

'महाराज किसी गम्भीर चिन्तनमें मग्न हैं ।' मन्त्रीने प्रवेश किया । अभिवादनके अनन्तर जिज्ञासाकी उन्होंने—'जन्मसे ही जिस कुलको विदेहत्व—विषय वैतृष्ण्य दायमें प्राप्त होता है, उसके अधिपतिको कोई लौकिक चिन्ता क्षणार्धके लिए भी आकृष्ट नहीं कर सकती ।'

'मेरा मन कभी किसी वस्तु या व्यक्तिकी चिन्तामें नहीं लगा करता था, यह सत्य है । स्वरूपानुभूति अखण्ड बनी नहीं रहती होगी किसीके मानसमें—मेरे लिए यही समझ पाना कठिन था ; किन्तु मन्त्रिप्रवर !' महाराजने दृष्टि उठाकर देखा—'जिस दिन धनुष यज्ञका समाचार पाकर महर्षि विश्वामित्र मिथिला पधारे और उनका स्वागत करने मैं आम्रोद्यानमें गया, श्रीरामभद्रके श्रीमुखपर दृष्टि पड़ते ही मेरी अवस्था बदल गयी । उसी दिनसे मेरा चित्त उस नवदूर्वादल श्यामके चिन्तनमें लगा और लगा सो लगा रह गया । स्वरूपानुभूति दूरकी वस्तु हो गयी ।'

'महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं—श्रीराम साक्षात् परात्परतत्त्व हैं ।' मन्त्रीने बिना कोई आश्चर्य प्रकट किये कहा—'व्यापक तत्त्व जब आनन्दघन होकर दृष्टि पथमें आजाय, चित्त उसमें लगा ही रहे, यही स्वाभाविक है ।'

'आज इस समय भी मैं उन्हींके सम्बन्धमें सोच रहा था ।' महाराजने बताया—'आज वनवासका अन्तिम दिवस है । इसका अर्थ है कि सुरकार्य सम्पूर्ण हो चुका ।'

'दशग्रीव श्रीरामके शरोंसे देहत्याग कर उनमें लीन हो चुका होगा, इसमें सन्देहका कारण नहीं है ।' मन्त्रीने कहा—'धन्य होगया वह नैकषेय ; किन्तु पुत्री भूमिजाको कितना कष्ट उठाना पड़ा·······'

'पुत्रीने निमि कुलको पवित्र कर दिया !' स्वभाव विरक्त, आत्मदर्शी महाराजमें मोह होगा, यह सोचा ही नहीं जा सकता । 'उसके वनगमनने लोकको उज्ज्वल आदर्श दिया और उसका कष्ट—उसका यह तप ही तो विश्वकी विपत्तिको विनष्ट करनेमें समर्थ हुआ है ।'

'लंका बहुत दूर है !' इस बार मन्त्रीके स्वरमें गाम्भीर्य आया—'श्रीराम भद्र यदि कल अयोध्या न पहुँच सके·······श्री भरतलालको आश्वासन प्राप्त होता यदि महाराज

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वहाँ पहुँच जाते ।' मन्त्रीने कई दिन पूर्व सम्मति दी थी महाराजको कि अयोध्या चलना चाहिये ।

'श्रीराम सत्य सङ्कल्प हैं। उनकी इच्छाका अवरोध कर सके, ऐसी कोई शक्ति त्रिभुवनमें नहीं। उन्होंने चित्रकूटमें भरतको वचन दिया हम सबके सम्मुख कि अवधि समाप्त होते ही वे अयोध्या पहुँचेंगे।' महाराजने शान्त स्वर में कहा— कोई स्थिति रामके वचनोंको अन्यथा कर दे सकेगी, ऐसी आशंका क्यों मन्त्रिश्रेष्ठ ? हम राज्याभिषेक के अवसर पर अयोध्या चलेंगे !'

'इस उल्लासमें सम्मिलित होनेका सौभाग्य मिलता !' इस वार मन्त्रिश्रेष्ठने अपनी अभिलाषा स्पष्ट प्रकटकी ।

'मैं इस उत्कण्ठाको समझ सकता हूं।' महाराजका स्वर शान्त रहा—'किन्तु चित्रकूट जाकर मैंने जो भूल की, वही भूल फिर करनेका साहस मुझमें नहीं है।'

'भूल ?' मन्त्रीकी समझमें कुछ नहीं आया। वे देखते रह गये महाराजके मुखकी ओर ।

'श्रीराम और लक्ष्मण वनसे लौट रहे हैं। उनके शरीर पर, उनके नवनीत सुकुमार श्रीअङ्ग पर वल्कल होगा या मृगचर्म ! उनके स्निग्ध कुञ्चित केश--अब वे जटाजूटी होंगे और भरत तपः कृश, जटाधारी, वल्कलाम्बर ही तो होंगे वे । चित्रकूटमें श्रीरामको इस वेशमें मैंने देखा और—नहीं, मन्त्रिश्रेष्ठ ! मैं उन दूर्वादल श्यामको पुनः इस वेशमें नहीं देख सकूँगा।'

'महाराजका निर्णय समुचित है।' मन्त्रीको अपनी भूल ज्ञात होगयी—'चित्रकूटमें जब पुत्री सीताने मुझे प्रणाम किया—हृदय विदीर्ण होगया वह वेश देखकर ।'

'किन्तु कन्याको उस वेशमें देखकर मैं पुलकित हो उठा था।' महाराजका स्वर आर्द्र हुआ—'मैंने धरा-कुमारीको तापस वेशमें देखा और लगा धन्य हो गया आज जनक।'

'हम श्रीरामको अब सम्राटके वेशमें ही देखेंगे, जब उनके वामाङ्गमें वैदेही साम्राज्ञीके रूपमें आसीन होंगी।' मन्त्रीके स्वरमें पुनः उल्लास आया—'अब अधिक दिन कहाँ हैं उस अवसरके लिए भी।'

'महर्षि याज्ञवल्क्य पधार रहे हैं।' दौवारिकने सूचना दी। महाराज तत्काल उठ खड़े हुए उन अमित तेजा महायोगीका अभिनन्दन करने ।

—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३६. महर्षि याज्ञवल्क्य

'राजन् ! श्रीराम भद्रके वनवासके चतुर्दश वर्ष आज पूर्ण हो रहे हैं ।' अयर्घादि स्त्रीकार करके आसन पर बैठते ही उन योगाचार्य ज्ञानियोंकी परिषदके परमाध्यक्षने कहा—'कल मिथिला महोत्सव मनायेगी अपने प्रिय सम्राटके वनसे राजधानी लौटने एवं दशग्रीव-विजयके उपलक्ष्यमें ।'

गौर वर्ण, प्रलम्बबाहु, विशाल अरुणाभ नेत्र, उन्नत तेजोदीप्त भाल, कपिस जटा-कलाप, सर्वाङ्ग जैसे सुनिपुण करोंसे सावधानी पूर्वक निर्मित हुआ था । योगाचार्यका श्रीअंग इतना सुगठित, इतना मृदुल, इतना अरुणाभ——मूर्तिमान तप एवं सौकुमार्यने जैसे एकत्व प्राप्त करलिया हो ।

'जैसी आज्ञा !' महाराज जनकके लिए कोई विकल्प कहाँ सम्भव था । उन्हें तो आश्वासन प्राप्त हो गया—श्रीरामभद्र कल अयोध्या लौट ही रहे हैं । महर्षिकी वाणी मिथ्याका स्पर्श तो कर नहीं सकती ।

'आत्मानुभूति अन्तरकी वस्तु है और उसे प्रदान नहीं किया जा सकता ।' महर्षिका गम्भीर स्वर आर्द्र हो चला, 'किन्तु वह गुरु नहीं, वह रक्षक नहीं और वह स्वजन नहीं जो अपने आश्रित, अपने पर निर्भर एवं अपने आत्मीयको त्रयताप-के विषम वाडवसे बचा नहीं लेता ।'

महाराज एवं महामन्त्रीने मस्तक झुका लिया । महोत्सवके आदेशके साथ इस उपदेशका समन्वय वे स.झ सके या नहीं यह अनुमान करनेकी आवश्यकता नहीं है । महर्षिने स्वयं स्पष्ट किया—'महोत्सव केवल महोत्सव नहीं होगा, वह श्रीरामका स्मरण करावेगा सम्पूर्ण जनपदको और श्रीरामका स्मरण-महादेवता मृत्यु भी वहाँ मस्तक ही झुकाते है ।'

महामन्त्रीके नेत्र एक बार उठे महर्षिकी ओर । उन्होंने कुछ कहा नहीं । श्रीराम परमतत्त्व हैं, यह उन्होंने अनेक बार महर्षिसे सुना है । प्रश्नका कोई कारण नहीं था और उनकी दृष्टिमें कोई प्रश्न था भी नहीं ।

'दुष्ट-शमन, धर्म-स्थापन, मर्यादा-रक्षण—ये ऐसे कार्य नहीं हैं कि सर्व समर्थका संकल्प इन्हें सम्पन्न न कर सके । अवतारका प्रयोजन ये नहीं बन सकते ।' महर्षि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कहते गये—'अपनी लीला मर्त्यलोकमें वे इसलिए व्यक्त करते हैं कि उनका स्मरण, चिन्तन, कीर्तन एवं परस्परानुकथन उन प्रणोंको पवित्र करे, जिन्हें प्रतिभाका पुनीत वरदान प्राप्त नहीं। जिनकी प्रज्ञा तत्त्वानुशीलनके योग्य नहीं हो सकी है। उस करुणा-वरुणालयके वे भी अपने हैं और वह उन्हें अपने अंकमें लेने ही धरा पर आता है। उसका नाम, उसका भुवन-मोहन रूप, उसके दिव्य चरित्र—ये उसके बढ़े हुए कर हैं। प्राणीको इन तक पहुँचा देना, विश्वात्माकी इससे सम्पूर्ण सेवा और कुछ नहीं हो सकती। हमारा महोत्सव—श्रीरामका आगमनोत्सव, यह लोक-मंगल महोत्सव तो होगा ही, हमारी अर्चा भी होगी अपने सम्राटके प्रति।'

'महाराज समुत्सुक हैं—अभिषेकके अनन्तर ही सम्राट अपने अनुजोंके साथ मिथिला पधारें, यह आमन्त्रण देनेके लिए!' महामन्त्रीने निवेदन किया 'धरानन्दिनी एवं उनकी अनुजाओंसे मिलनेको महारानीका अन्तर आकुल है।' यह कुलगुरुसे अभ्यर्थना थी कि वे ऐसा आमन्त्रण देनेकी अनुमति प्रदान करें और यदि आवश्यक हो—विशेष निर्देश भी।

'श्रीरामने अभीप्सु प्राणोंकी पुकार अनसुनी करना सीखा नहीं है।' महर्षिका स्वर गद्-गद् हुआ—'आमन्त्रण मर्यादाकी रक्षा करेगा। वैसे उन्हें अन्तरका आह्वान पर्याप्त होता है और मिथिलाको तो उन्होंने स्वत्व प्रदान किया है। महाराज अपनी कुमारियोंको लाना चाहें, यह स्वाभाविक है और इस प्रार्थना को राजमाता एवं अवध के कुलगुरु अस्वीकार नहीं कर सकते। अवधके कुमारोंको हम क्यों आमन्त्रित करेंगे, उन्हें तो स्वयं आना चाहिए यहाँ।'

महाराजने मस्तक झुकाया। महामन्त्री किञ्चित् संकुचित हुए। यह बात उनकी दृष्टिमें क्यों नहीं आयी? साम्राज्ञीको ले आनेका उन्हें स्वत्व है और विदा कराने तो सम्राटको आना ही पड़ेगा।

'हम कलके महोत्सवकी प्रस्तुति करेंगे।' महर्षिने निर्देश देना प्रारम्भ किया—'यज्ञ, देव-द्विज-गोपूजन महोत्सवके प्रधान अंग रहेंगे। नगरकी सज्जा तो होगी ही।' महर्षि स्वयं ऋषियोंके साथ एक विशाल सत्र प्रारम्भ करने जा रहे हैं।

'भुवन पवित्र होता है श्रीरामके स्मरणसे।' महर्षिने महोत्सवके उद्देश्यकी पुनः सूचना देकर, प्रस्थान करनेकी बात कही और अपने आसनसे उठ खड़े हुये।

—*—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४०. महारानी सुनयना—

'मेरी बच्चियाँ !' आज यह प्रथम अवसर नहीं है। महारानी सुनयनाके नेत्र उसी दिनसे निर्झर बन गये हैं, जिस दिन उन्होंने सुना कि उनकी पुत्री वल्कल धारण करके अपने आराध्यका अनुगमन करते वन चली गयी हैं और जब चित्रकूटमें अपनी उस हृदयनिधिको तपस्विनी वेशमें देखा उन्होंने—उन पर क्या बीती, आप अनुमान कर सकते हैं। लंकाका दुर्धर्ष राक्षस जानकीको हरण कर लेगया, इस समाचारने तो उन्हें विक्षिप्त ही बना दिया था।

'मेरी सुमनदल सुकुमार बालिका और वह निसर्गक्रूर राक्षसियोंके मध्य !' वेदनाका यदि एक ही हेतु होता; किन्तु 'वह जन्मसे स्वाभिमानिनी उर्मिला—उसने जाना ही नहीं था कि शोक क्या होता है और अब वह राजसदनमें ही तापसी होगयी है।' माण्डवी तथा श्रुतिकीर्तिकी वेदना और कोई समझे या न समझे, मातासे वह कहाँ छिपी थी। इतनी पीड़ा—अपनी प्रत्येक सन्तानकी पीड़ा माता-पिताके पास पहुँचकर एकत्र होजाया करती हैं। माता सुनयनाकी व्यथा—उनके स्वामी ज्ञानियोंके भी गुरु हैं, वे मोहातीत, नित्य निर्विकार महाराज विदेहकी भार्या हैं, यह ठीक—जननीका यही आधार तो उनके जीवनको किसी प्रकार बचाये है, किन्तु वे जननी हैं—वात्सल्य कहाँ किसी बोधसे बाधित होता है।

'मेरी बच्चियाँ।' एक-एक दिन जिसे शत-शत कल्प प्रतीत होता हो, उसकी गणनामें भूल तो सम्भव नहीं है—'आज अन्तिम दिन है श्रीरामभद्रके वनवासका। रावण सुरासुर अजेय है और उससे संग्राम चल रहा था। यहाँ अयोध्यामें भरत............!'

'कल प्रात: महोत्सव मनावेंगे महारानी !' महाराज जनकने अन्त:पुरमें प्रवेश करते हुए कहा—महर्षिने—'अपने महायोगेश्वर कुलगुरुने आदेश दिया है कि श्रीरामभद्रकी विजय, एवं प्रत्यावर्तन-महोत्सवको कल मिथला मनायेगी !'

'विधातासे वर प्राप्त, अमरप्राय असुरेश्वर दशग्रीवसे वत्स रामभद्रका संग्राम....' महारानी चौंक पड़ी थीं। उन्होंने जो कुछ सुना था, सहसा उस पर कोई कैसे विश्वास कर लेता।

'समाप्त हो गया वह संग्राम। दशग्रीवके वरदान उसे बचा नहीं सकते थे। श्रीरामभद्रसे शत्रुता करके कोई सुरक्षा किसीको कहीं किसीके द्वारा—किसीके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वरदान या साक्षात् साहाय्यके द्वारा भी प्राप्त होनी सम्भव नहीं। सो चुका सदाको दशग्रीव समर भूमिमें श्रीरामके शरोंका स्पर्श प्राप्त कर।' महाराजने इस वार उल्लास भरे स्वरमें पूरा स्पष्टीकरण किया।

'सत्य ही ? समाचार मिला मिथिलामें ?' महारानीका वर्षोंसे म्लानमुख आज कान्तिमान हुआ—'अयोध्यासे चर आया ? कहाँ है वह ?'

'चर आवेगा' महाराजके मुखपर स्मित आया; 'किन्तु उसे आनेमें समय लगेगा। कुलगुरुकी सर्वज्ञता चरकी अपेक्षा नहीं करती और स्वयं वे पधारे थे राजसदन यह सम्वाद देनेका अनुग्रह करने।'

'स्वयं कुलगुरुने कहा है ?' महारानीके नेत्र आज आनन्दाश्रुसे प्रपूरित हुए। शोकके उष्णाश्रुओंने जिन विशाल दृगोंको चौदह वर्ष सन्तप्त किया था, सुशीतल होगये वे उल्लासके अमृत सीकरोंसे। श्रद्धाके आवेगसे वहीं महारानीका मस्तक कुलगुरुके निमित्त भूमि पर जा लगा। दो क्षण उनके कण्ठसे कोई शब्द नहीं निकला।

'उन अमित तेज आचार्यने आदेश दिया है' महाराजने सोल्लास सुनाया—'मिथिला प्रात कालसे महोत्सव मनाये। वे स्वयं विशेष सत्र करनेकी आतुरतामें थे। अन्तःपुरमें इसीसे पधारनेका अनुरोध भी मैं नहीं कर सका।'

'मुझे अपनी कन्याओंके लिए उपहार भेजने हैं !' महारानी खड़ी हुईं—'उन दुःखिनियोंको पूरे चौदह वर्ष अपने पितृ-गृहमे कुछ मिला नहीं और वे इतनी हठी हैं सबकी सब—वार-वार वुलाने पर भी उनमें-से एकने भी तो यहाँ आना स्वीकार नहीं किया। कोई दो दिनको भी तो नहीं आयी। महारानियों एवं अवधके कुलगुरुकी अनुमति—किन्तु वे स्वयं ही न आना चाहें तो अनुमतिका क्या उपयोग ?'

'अब महारानीको यह उपालम्भ देनेका अवसर नहीं प्राप्त होगा। अव वे चारों ही एक साथ प्रथम आह्वान पर आ जायँगी। अपनी अग्रजाको वनमें छोड़ उनमें कोई अकेली नहीं आयी—उचित ही आग्रह तो था उनका।' महाराज प्रसन्न थे और महारानीमें भी उपालम्भ नहीं, स्नेह उमड़ा पड़ रहा था।

'मैं उन सबको वुलाऊँगी ! श्रीरामके राज्याभिषेकमें आप अयोध्या पधारेंगे। उन सबको साथ ले आइये !' महारानीने बात पूरी कर दी—'अवधके चारों कुमार उन्हें लेने स्वयं मिथिला आवेंगे, तव वे यहाँसे जायँगी।'

—:०:—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४१. कुमार लक्ष्मीनिधि–

'सम्राटको मिथिलाकी ओरसे जो उपहार अर्पित होगा, हमारे अनुरूप होना चाहिए उसे।' कुमार लक्ष्मीनिधि*–श्रीवैदेहीके वे अग्रज—वे तो आजसे नहीं, इधर बहुत दिनोंसे व्यस्त हैं। सम्राट—किन्तु यह सम्राटको ही उपहार अर्पित करनेकी बात कहाँ है। अवधके सम्राट केवल सम्राट तो नहीं, ऐसा कौन है जो उन्हें अपना सुहृद न पाता हो और मिथिलाके तो वे अपने हैं।

'तुम्हारे सम्राट अभी तो वनमें हैं!' अनेक बार माताने कहा—'उन्हें लौटने तो दो। मिथिलामें जो कुछ है, वह उनका ही तो है।'

'वे तो लौटेंगे ही' कुमारको इसकी चिन्ता नहीं, चिन्ता दूसरी ही है—'उनके योग्य वस्तु भी तो हो हमारे पास। अपने सम्राटको हम वेर तो देंगे नहीं।'

'सुना है वेर उन्हें बहुत प्रिय हैं' एक दिन कुमारकी पत्नीने हँसकर कहा था—'भीलनीके जूठे वेर वनमें खा लिये उन्होंने, यह बात कुलगुरुसे कोई महर्षि अगस्त्यके आश्रमवासी कह गये हैं।' परिहासके अपने अधिकारका यह समुचित उपयोग था।

'वे परमोदार! उनका अनुग्रह तो रिक्त हस्त जाकर भी पूरा ही पाया जा सकता है।' अपार अनुराग है मिथिलाके राजकुमारका अपने सम्राटके प्रति—'किन्तु हमें तो अपने गौरवका भी विचार करना है।'

कठिनाई यह है कि कुमारको कोई वस्तु उपयुक्त नहीं जान पड़ती—'इनका ढेर है अयोध्यामें!' वे अलभ्य मणियाँ उठाते हैं कोषागारमें पहुँचकर और फिर फेंक देते हैं उपेक्षासे। 'अयोध्याके श्यामकर्ण' अपनी अश्वशालाका कोई अश्व या गजशालाका कोई श्वेतगज उनकी दृष्टिमें ठीक नहीं उतरता।

'आज श्रीरामभद्रके वनवासका अन्तिम दिन है।' महाराजने उन्हें राजसदनमें बुलाकर आदेश दिया है—'कल मिथिला उनके प्रत्यावर्तनके उपलक्षमें महोत्सव मनाये।'

कुमारका अश्व पूरी रात्रि थिरकता रहा है। उन्होंने स्वयं सम्पूर्ण साज-सज्जा, उत्सव व्यवस्था, यज्ञ-मंडपादिका निर्माण अपने निरीक्षणमें कराया है। रात्रि भर

---

* इनका दूसरा नाम कुशध्वज है। —भागवत ९.१३.१९

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसके आयोजनमें अत्यन्त व्यस्त रहे हैं, किन्तु उनकी चिन्ता—वह कहाँ उन्हें छोड़ती है। 'सम्राट कल अयोध्या पहुँच रहे हैं। उनके अभिषेकका समय समीप आगया और अब तक भी हम अपने उपहार एकत्र नहीं कर सके हैं।'

'हमारा उपहार है चिउड़ा।' युवराज्ञीने आज भी परिहास किया, जब कुमार कुछ क्षणको अपने अन्त:पुर आये—'अवधके कुमारोंको वह वन्य बदरी फलोंकी अपेक्षा अवश्य अधिक सुस्वादु प्रतीत होगा।'

'वह तो जायगा ही।' आज कुमार इतने व्यस्त थे कि परिहास ग्रहण करना उनके लिए शक्य नहीं था—'वह तो प्रतिवर्ष जाता है। कुछ विशेष न एकत्र हुआ तो मैं प्रार्थना करूँगा—'लक्ष्मीनिधि स्वयं अपनेको अर्पित करता है।'

'जैसे आप अब तक उनके नहीं हैं।' युवाराज्ञी किंचित हँसी—'चलिये मिथिलामें एक स्वतन्त्र जन तो निकले। महाराज तो कहते हैं कि उन्होंने आम्रोद्यानमें देखा अवधके कुमारोंको और उनके होगये।'

'बात तो तुम्हारी ही सत्य है।' कुमारने भाव-पूर्वक अर्धाङ्गिनीकी ओर देखा—'किन्तु सेवककी सेवा यही तो है कि स्वामीकी वस्तु उनकी सेवामें उपस्थित कर दे।'

'आप जो कुछ ले जायँगे, अत्यन्त प्रिय होगा वह आपके सम्राटको।' इस बार वह कोकिल कण्ठ गम्भीर होगया—'आपको अपना सन्तोष प्राप्त करना है, किन्तु वह कभी न होगा। ऐसी कोई वस्तु—कोई उत्तम वस्तु विधाताकी सृष्टिमें बनी नहीं जो अयोध्याके इन नवीन सम्राटको अलभ्य हो।'

'सचमुच हम उन्हें क्या दे सकते हैं!' इस अनुभवने कुमारको आनन्दित ही किया।

'वे यहाँ पधारेंगे?' युवराज्ञीने पूछा।

'पितृचरण कहते हैं, वे पधारेंगे।' कुमार सोल्लास कह गये—'मैं अपनी बहिनोंको साथ लाऊँगा और उन्हें अयोध्या लेजाने उन्हें आना ही है। तुम्हें उनके सत्कारका सुअवसर प्राप्त होगा।'

'वे पधारेंगे!' युवराज्ञीकी अद्‌भुत भाव-विह्वल दशा हो गयी, किन्तु कुमारको आज अवकाश नहीं है। उन्हें प्रात:कालीन महोत्सवकी प्रस्तुति सम्पूर्ण करनी है।

ब्रह्म मुहूर्तके प्रारम्भमें ही मिथिलाके राजसदनके ऊपरसे महोत्सव प्रारम्भ करनेकी घोषणा करता कुमारका शंखनाद दिशाओंको निनादित करने लगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४२. बहिन शान्ता-

मैं ऋषि पत्नी हूँ। सामान्यजनोंके समान मेरे मनमें मोह आवे, यह मेरे लिए अत्यन्त अशोभन है। मेरे मनमें मोह कभी आया भी नहीं। शैशवमें ही पिताने मुझे अङ्ग नरेशको दे दिया। मैं तो अङ्गदेशको ही पितृस्थान जानती हूं। महाराज रोमपाद एवं उनकी महारानी ही मेरे माता-पिता हैं। मेरे स्वामी ऋषियोंमें भी सम्मानित हैं और वे मेरे पितृगृह ही अधिक रहते हैं। इतने पर भी मेरे मनमें तो पिता-माताका मोह भी कभी नहीं आया।

अपने स्वामीके साथमें अयोध्या गयी थी जब चक्रवर्ती सम्राटने अश्वमेध यज्ञ किया था। कितना सम्मान, कितना सत्कार हुआ था हमारा अयोध्यामें। मेरे लिए यही जानना कठिन हो गया था कि चक्रवर्ती सम्राटकी महारानियोंमें मेरी जननी कौन-सी हैं। सबका ही तो वात्सल्य उमड़ पड़ा था मेरे प्रति।

सौमित्र देशसे अङ्गकी सीमा मिलती हैं। अनेक बार महाराज सुमित्रने सन्देश भेजे, उनके उपहार तो आते ही रहते हैं। स्वयं वे अपनी इस दौहित्रीको ले जाने आए, किन्तु मेरे मनमें ही ऐसी कोई उमंग नहीं उठती। मैंने उन्हें निराश किया—'मुझे आप क्षमा करें। मुझे तपोवन प्रिय लगता है। राजसदनमें मुझे कारावद्ध हो जाने जैसी विवशता लगा करती है।'

मेरे स्वामीने ही अयोध्यामें पुत्रेष्ठि यज्ञ कराया था। उस यज्ञमें अग्निदेवने स्वयं प्रकट होकर चक्रवर्ती महाराजको पायस प्रदान किया था। उस पायसके प्राशनसे अयोध्यामें चार राजकुमार क्या प्रकट हुए, मेरे मनमें पता नहीं कहाँका दबा मोह प्रकट हो गया। वे चारों मेरे भाई हैं—मेरे स्नेह भाजन छोटे भाई। मैं मनको कितना भी समझाती हूँ, रोकती हूँ—किन्तु मेरा स्नेह मानता नहीं है। मेरे मनमें उनका ही चिन्तन चलता रहता है।

मैंने स्वामीसे अपनी दुर्बलता निवेदनकी, किन्तु वे तो उस पर विजय पानेका कोई साधन निर्दिष्ट करनेके स्थान पर मेरी ही प्रशंसा करने लगे—'तुम धन्य हो। अयोध्याके राजकुमारोंमें तो जन्म-जन्मका तपःपूत मनभी अत्यन्त कठिनाईसे किञ्चित लग पाता है।'

स्वामी कहते हैं—'नवदूर्वादल श्याम श्रीराम साक्षात् परात्पर पुरुष हैं। उनमें चित्तका लगना प्राणीका परम सौभाग्य है।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परात्पर पुरुष होंगे श्रीराम ! मैं स्वामीके वचनों पर अविश्वास नहीं कर सकती, किन्तु मुझे तो वे और उनके तीनों अनुज अपने स्नेह—भाजन ही लगते हैं। मेरे छोटे भाई हैं वे।

मुझे क्रोध तो नहीं आया था, किन्तु वितृष्णा हो गयी थी अयोध्यासे, अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राटसे। मुझे लगता था कि मैं उनकी पुत्री नहीं रही, अङ्गनरेशकी पुत्री बनी, यह अच्छा हुआ। जो श्रीराम जैसे कुमारको वन दे दें, उनकी पुत्री होनेमें कोई गौरव नहीं। मुझे उनकी महारानी कैकेयीसे ही नहीं, सब महारानियोंसे और रघुकुल गुरु महर्षि वशिष्ठ तकसे वितृष्णा हो गयी। वहाँ कोई ऐसा क्यों नहीं है कि कैकेयीको शाप दे देता ? कोई उस अन्ध हठी रानीको निषेध करनेमें क्यों समर्थ नहीं हुआ ?

श्रीराम वनमें गये श्रीजानकीके साथ और उनके साथ गये लक्ष्मण। मुझे श्रीरामसे अधिक गर्व है लक्ष्मण पर। वे मेरे सहोदर अनुज—सूना वनमें चतुर्दश वर्ष वे निराहार अनिद्र अग्रजकी सेवामें तत्पर रहे। उनका तप और नन्द्रिग्राममें भरतका लोकोत्तर तप—मुझे अत्यन्त गौरवका अनुभव होता है कि मैं ऐसे भाईयोंकी अग्रजा हूं।

स्वामी विभोर हो उठते हैं श्रीराम या भरतकी चर्चा करते समय। वे पता नहीं कितनी बातें कह जाते हैं। 'श्रीरामने लोककण्टक रावणको शमित करनेके लिए ही यह सब लीलाकी है।'

कुछ भी हो, रावण मारा जा चुका। ऋषि-मुनियोंका और सुरोंका वह संकट समाप्त हो गया। कल श्रीराम अयोध्या आवेंगे। आवेंगे उनके साथ लक्ष्मण और भरतके दीर्घकालीन तपका उद्यापन होगा। अब मेरे मनमें इस अवसर पर अयोध्या पहुँचनेका प्रबल मोह जाग उठा है। मुझ ऋषि-पत्नीके लिए यह मोह उचित है ? मेरे मनमें तो कभी किसी नगरमें जानेकी इच्छा नहीं हुई। मुझे तो नगरोंके कोलाहलसे सदा अरुचि रही है। मैं तपोवनमें सुख मानने वाली और अयोध्या तो कल कोलाहलपूर्ण होगी। अयोध्याके सब सम्बन्धी पहुंचेंगे वहाँ। ऐसे समय अयोध्या पहुंचनेकी मेरी यह उत्कण्ठा ?

स्वामी सुनकर हँसते हैं। वे न मेरी भर्त्सना करते और न मुझे साधन बतलाते। वे तो उल्टे मेरे साथ अयोध्या चलनेको प्रस्तुत हो गए हैं—'किसी ऋषिको किसी नरेशके समीप जानेमें आमन्त्रणकी अपेक्षा नहीं होती। अयोध्या तो तुम्हारा पितृगृह है। श्रीरामके राज्यभिषेकके समय आशीर्वाद देने उपस्थित रहनेका उत्साह मेरे मनमें कम नहीं है। मैं एकाकी तो वहाँ जाऊँगा नहीं।'

स्वामी जाना चाहते हैं तो मेरी उत्कण्ठा अनुचित नहीं है। अयोध्या जाना है मुझे। अपने छोटे भाइयोंसे मिलनेकी तीव्रतम उत्कण्ठा मेरे हृदयमें जाग उठी है।

—:※:—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वे मिलेंगे

(गतांकसे आगे)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आचार्य शुक्र—

अनन्तसे एकत्व, सम्बन्ध, आत्मत्व स्थापित नहीं करना पड़ता। जो सर्वत्र है, सर्वव्यापक है, सर्वात्मा है, वह किसीका भी त्याग कैसे कर सकता है और कोई भी उसका त्याग कैसे कर सकता है ? वह तो अपनेसे अभिन्न है। इसमें अधिकारी-अनधिकारीका उत्तम-अधमका प्रश्न कहाँ उठता है।

वासुदेव सर्वात्मा, सर्वस्वरूप हैं। इसलिए वे सबके अपने हैं। उन अनन्त करुणार्णवमें किसीके भी प्रति उपेक्षा अथवा कठोरताका उदय ही सम्भव नहीं है।

मेरी स्पर्धा है सुरगुरु बृहस्पतिसे, यह हमारा वैयक्तिक विषय है; किन्तु वासुदेवने तो हममें-से किसीके प्रति कभी कोई पक्षपात नहीं किया। उन सर्वात्माकी अनुकम्पासे बृहस्पति यदि नीतिशास्त्र पासके तो सृष्टि जानती है कि शुक्र नीतिशास्त्रका सुरगुरुसे श्रेष्ठ आचार्य है।

आशुतोषने मुझे सञ्जीवनी विद्या दे दी। बृहस्पतिको अपना पुत्र भेजना पड़ा इस विद्याकी प्राप्तिके लिए मेरे समीप।

बृहस्पतिका गर्व व्यर्थ है कि वे सुरगुरु हैं और उनके शिष्य सत्त्ववृत्ति हैं। मेरे शिष्य असुर सुरोंसे कहीं अधिक शक्तिशाली हैं, शिष्ट हैं और मेरे प्रति विनययुक्त हैं।

जहाँ तक श्री हरिकी अनुकम्पाकी बात है, वे उपेन्द्र बनकर यदि देवताओंके आश्रय हैं तो स्वयं वामन बने मेरे शिष्य बलिके द्वारपर नित्य उपस्थित रहते हैं। उनका ऐसा संरक्षण सुरोंको स्वप्नमें भी प्राप्त नहीं है।

श्रीकृष्णचन्द्रके रूपमें अवतीर्ण इन परात्पर पुरुषसे तो शक्रने युद्ध तक कर लिया। सुरोंसे इनका सम्बन्ध बहुत दूरका, बहुत घुमा-फिरा कर बनता है; किन्तु मुझसे तो इनका सीधा सम्बन्ध है। इस सम्बन्धमें मुझे अपने शिष्योंको भी स्मरण करनेकी आवश्यकता नहीं। ये द्वारिकाधीश मेरे दौहित्र यदुके कुलमें उत्पन्न हुए हैं। शुक्रकी कन्या देवयानीके वंशधर ये। बृहस्पति इस गौरवको कभी उपलब्ध नहीं कर सके।

मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम त्रेतामें अवतीर्ण हुए तो ग्रह-मण्डलमें बृहस्पति गौरवान्वित हुआ। वह उनके लग्नमें उच्चका स्थित था और मर्यादाका मानदण्ड जिसे स्थापित करना था, वह गुरुका प्रभाव प्रमुख मानता ही; किन्तु वह त्रेता तो कबका व्यतीत हो चुका।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस बार वही पुरुषोत्तम धरा पर आया है—पूर्णपुरुष आया है और आया है लीला-पुरुषोत्तम होकर। यह त्रिभुवन-सुन्दर मयूर-मुकुटी। इसने तो अनेक प्रकारसे मुझे सम्मानित किया। यह मेरे दौहित्रकुलमें आया, मुझे अपना लग्नाधिप बनाया इसने और बृहस्पतिको तृतीयेश बना दिया।

शुक्र स्वयं भले एकाक्ष हो; किन्तु सौन्दर्य एवं ललितकला इसकी अनुकूलताके बिना कभी किसीको प्राप्त हुई है? श्रीकृष्णकी—पूर्णपुरुषकी कोई क्या सेवा करेगा? वे निखिल-कलंक-गुरु हैं; किन्तु शुक्र उनकी आविर्भाव कुण्डलीका लग्नेश है, उनके मातृ कुलका मूल है, उनको आवश्यकता है या नहीं, यह मैं क्यों देखूँ? मेरा आशीर्वाद सदा उनके साथ। मेरा समस्त प्रभाव-वैभव उनका सहज स्वत्व। मेरा उपहार उनके लिए। उनकी प्रत्येक मात्राका पृष्ठ रक्षक, पृष्ठ प्रकाशक शुक्र। शुक्र पीछे रहकर सदा अपनी सौम्य किरणोंसे उनका पथ प्रशस्त करता रहेगा।

क्या हुआ कि मैं असुर गुरु हूँ। क्या हुआ कि मैं एकाक्ष हूँ। वासुदेवके समीप जानेमें तो मुझे कोई बाधा नहीं है। लेकिन मेरा संकोच बाधक है। अन्ततः यदुकुल मेरी पुत्रीका कुल है। मैं वहाँ सत्कृत होने जाऊँ, यह मुझे ही उचित नहीं लगता। बृहस्पति चाहें तो वहाँ दक्षिणा-ग्रहण करने जा सकते हैं; किन्तु मैं तो इस प्रकार नहीं जा सकता। मेरे समीप क्या है जो श्रीकृष्णको, उनके स्वजनोंको, पुत्र-पौत्रोंको उपहार लेकर मैं द्वारिका जाऊँगा? अन्ततः मैं अपरिग्रही हूँ और मेरे शिष्य असुर हैं। इन असुरों की सम्पत्ति न्यायार्जित ही है, यह आश्वासन तो मेरे समीप भी नहीं है। वासुदेवकी सेवामें लगने योग्य कुछ भी शुभ, पवित्र नहीं है उनके समीप। सुतलका सम्पूर्ण वैभव तो बलिको वामनके प्रसादमें प्राप्त हुआ है। वह उपभुक्त निर्माल्य तो पुरुषोत्तमके योग्य नहीं है।

द्वारिका मैं चला जाता तो मुझे वासुदेवकी पूजा ग्रहण करनी पड़ती। पूजा तो कुरुक्षेत्रमें भी ग्रहण करनी पड़ेगी; किन्तु कुरुक्षेत्र तीर्थ है, पर्वकाल होगा। वहाँ पदार्थ-का परित्याग सहज सम्भव है। वहाँ जाकर मैं निकटसे प्रत्यक्ष वासुदेवको देख सकूँगा। उनको, उनके सम्पूर्ण कुलको, उनके परिकरोंको प्रत्यक्ष आशीर्वाद दे सकूँगा। यही अवसर है मेरे लिए। इसी समय वे पुण्डरीकाक्ष मुझे निकट मिल सकते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महर्षि अगस्त्य—

अब अगस्त्यके लिए दक्षिण भारतमें ही रहना आवश्यक नहीं रह गया। त्रेतामें ही श्रीरामभद्रने इस विवशतासे मुझे मुक्त कर दिया था। वे मर्यादा पुरुषोत्तम अवतीर्ण हुए धरापर तब कैसे सम्भव रह गया कि गिरि, नदी, सिन्धु आदिके अधिदेवता अपनी मर्यादाका त्याग करें। सेतुबन्धसे पूर्व सरोष सागरपर शरसन्धान करके उन्होंने न केवल समुद्रको. अपितु धराके सभी अधिदेवता सुरोंको संकेत कर दिया कि अब किसी भी सुरका प्रमाद सहन नहीं किया जा सकता। विन्ध्यगिरि पुनः बढ़ना प्रारम्भ कर देगा, यह आशका निर्मूल हो गयी। विन्ध्यकी वृद्धिपर अंकुश रखनेके लिए अगस्त्यका दक्षिण बने रहना अनावश्यक हो गया।

अगस्त्यका दक्षिणके दण्डकारण्यमें अपना आश्रम बना लेना लङ्काको राजधानी बनाकर बस गये राक्षसोंके औद्धत्यपर अंकुश रखनेके लिए भी आवश्यक था। अरण्य तपस्वीवृन्दके लिए सुरक्षित रहना चाहिये। तपस्वीको वनमें स्वेच्छानुसार आश्रम बना लेनेका स्वत्व है, यह तथ्य दशग्रीवको स्वीकार ही नहीं था। जब उसने मयराष्ट्रके काननमें अपनी विधवा भगिनी शूर्पणखाको खर-दूषण-त्रिशिराके साथ नियुक्त कर दिया विशाल राक्षसी-सेना देकर, तब यह आवश्यक हो गया कि इन सुर-श्रुति-साधु विरोधी राक्षसोंपर अंकुश रखनेको कोई वहाँ बना रहे। राज्य शक्ति जब तपस्वियोंको सर्वत्र सुरक्षा देनेमें असमर्थ हो जाय, यह दायित्व किसी तापसको ही उठाना आवश्यक हो जाता है। मैंने स्वेच्छापूर्वक यह दायित्व स्वीकार कर लिया था।

विन्ध्यसे उत्तर राक्षसोंका उत्पात बढ़नेपर अंकुश लग गया। अरण्य भले सर्वत्र रक्षित नहीं हुआ, अनेक आश्रम तो तपस्वियोंके बन ही गये जहाँ-तहाँ। लेकिन वत्स रामभद्रने अगस्त्यके स्वयं स्वीकृत दायित्वको पूरा कर दिया। दशग्रीव उनकी शराग्निमें स्वाहा हो गया। विभीषणको लङ्काका आधिपत्य देकर राक्षसोंकी विभीषिकाको श्रीरामने सदाके लिए समाप्त कर दिया। अगस्त्यको चाहे जहाँ रहने, आने-जानेकी स्वतन्त्रता प्राप्त हो गयी।

श्रीराम मर्यादा-पुरुषोत्तम थे; किन्तु वही परात्पर पुरुष जब इस द्वापरान्तमें लीला-पुरुषोत्तम होकर धरापर पधारे, शैशवमें ही इन मयूर मुकुटीने सुरेन्द्र एवं सृष्टि-कर्ता चतुर्मुखको भी अच्छा पाठ पढ़ा दिया। इन्होंने स्पष्ट कर दिया कि सृष्टिकर्ताका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भी प्रमाद ये सहन नहीं करेंगे। गाण्डीव धन्वाके साथ एक रथमें बैठकर खाण्डववन अग्निको दे दिया इन्होंने इन्द्रके पूरा विरोध करनेपर भी। दानवेन्द्र मय जैसे मायावियोंके परमाचार्य, अजेयको भी हाथ जोड़कर प्राण-भिक्षा माँगनी पड़ी। सिद्ध कर दिया इन्होंने कि सहस्राक्ष भी गर्वान्ध होता है और उसका भी दमन किया जाता है। अब इन चक्रायुध गरुड़ध्वजके धरापर रहते ऋषि-मुनियोंको किसका भय। सुर-असुरोंका अभाग्य उदय हो तो उपद्रवका साहस कर देखें। अब अगस्त्यको कोई चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है।

श्रीरामने भारतको त्रेतामें दक्षिणके उद्धत राक्षसोंसे निर्विघ्न बना दिया था, श्रीकृष्णने पश्चिमके मर्यादाहीन यवनोंसे कालयवनका वध करके सुरक्षित तो किया ही, पूर्वमें नरकासुरको समाप्त कर दिया और कैलासपर तपस्या करनेके बहाने पिशाचोंके आतङ्कसे उत्तरकी ओरसे भी निष्कण्टक कर दिया।*

अब तो कहींसे किसी प्रकारकी आशङ्का अवशिष्ट नहीं है। युगों तक अगस्त्य अपनी ही इच्छासे बिना कुछ कहे असुरोंके आतङ्कके विरुद्ध तपस्वियोंका संरक्षक रहा है। इसके कार्यको जिसने सम्पूर्णता दी, जिसने इसे सर्वथा निश्चिन्त किया, उससे अधिक कोई इसके आशीर्वादका अधिकारी है?

त्रेतामें श्रीरामभद्रको मेरे समीप आना ही था। दशग्रीव-दलनके लिए दक्षिणापथमें आते ही वे, और तब अगस्त्याश्रम मार्गमें पड़ता था। मैं उनकी क्या सेवा करता? एक अरण्यानी अकिञ्चन परमपुरुषकी सेवा कर भी क्या सकता है? उनके पधारनेसे अगस्त्याश्रम धन्य हो गया। मैं उनके सिंहासनासीन होनेपर अयोध्या गया, न जाता तो अकृतज्ञ सिद्ध होता अपनी ही दृष्टिमें।

अब क्या द्वापरमें भी आवश्यक है कि वासुदेव अरण्यमें अगस्त्याश्रम आवें? उन्होंने ऋषि-मुनियोंको निरापद कर ही दिया है। अगस्त्य उन्हें प्रत्यक्ष उपस्थित होकर आशीर्वाद देगा। कुरुक्षेत्रमें पुण्यपर्वपर सबसे उपयुक्त अवसर है इसके लिए। इस अवसरपर वे सपरिकर मुझे तीर्थस्थलमें मिलेंगे।

—:o:—

* कथा 'श्रीद्वारिकाधीश' में है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महर्षि गौतम–

अपने आराध्य अम्बिकेश्वर भगवान गङ्गाधर ही जिनको हृदयमें धारण करते हैं, जिनके नामका सतत जप करते रहते हैं, उनके दर्शनोंकी उत्कण्ठा मेरे हृदयमें बनी है, इसमें तो आश्चर्यकी बात नहीं है।

यह अनुकम्पा आशुतोष प्रभुकी, कि वे इस अपने चरणाश्रितका आग्रह स्वीकार कर लेते हैं। इसे उन्होंने उसी प्रकार गोदावरी प्रदान की, जैसे भगीरथको गंगा दी थी। दोनों ही तो उनकी जटाओंमें स्थित विष्णुपदी ही हैं।* इसपर अनुग्रह करके वे शशाङ्क-शेखर उस गौतमीके तटपर त्र्यम्बकेश्वर रूपमें अवस्थित हुए।* इस अपने सेवकका आग्रह स्वीकार करके श्रीहरिके साथ इसके अतिथि बने।* इस गौतमके वे नीलकण्ठ ही सर्वस्व हैं। इसके वे वृषभध्वज धूर्जटि ही आश्रय हैं।

गौतम शैव है। भगवान शङ्करका सेवक है यह, इसमें तो किसीको कोई सन्देह करनेका कारण नहीं है और मुझे तो किञ्चित् सन्देह नहीं है कि मेरे शूलपाणि आराध्यके अनुग्रहसे ही मुझे अनन्तशायी गरुड़ासनका स्नेह प्राप्त हुआ है।

मेरा ही प्रमाद था कि मैंने पत्नीको शाप देकर शिला बना दिया। उस सतीका तो कोई अपराध नहीं था। इन्द्रने उसके साथ छल किया था। छल करनेवाला दोषी होता है। अहल्याका तो अपराध नहीं था। जितनी सावधानी अपेक्षित थी, वह नहीं रख सकी थी; किन्तु यह अपराध हो तो उसे शाप देनेमें क्या मैंने ही उतनी सावधानी रखी? मर्यादा-पुरुषोत्तमने अवतीर्ण होकर उस निरपराध अबलाको शाप-मुक्त किया। मैं पत्नी-वियोगसे परित्राण पा गया। उनकी पद-रज-पुनीता पत्नी, गौतमको यह प्रसाद अपने अवढर दानी आराध्यके अनुग्रहसे नहीं मिला, यह आप विश्वासपूर्वक कह सकते हैं?

'वे इन्दीवर सुन्दर अवतीर्ण हुए हैं धरापर। उन कमल-लोचनकी चरण-वन्दनाका सौभाग्य मुझे एक बार और मिल सकता है, यदि आप अनुमति दें।' अहल्या बार-बार आग्रह करती है; किन्तु इस आग्रहकी अब कोई आवश्यकता है? मेरे मनमें उन मयूर मुकुटीके दर्शनकी कम उत्कण्ठा है?

* ये कथाएँ 'शिव-चरित' में आयी हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'अब तक मैं द्वारिका नहीं जा सकी।' पत्नी मेरा संकोच समझ नहीं पाती और मैं कह भी नहीं पाता। ये द्वारिकाधीश वही त्रेताके अयोध्याके चक्रवर्ती नरेशके राजकुमार हैं। इन्होंने महाराज सीरध्वज जनककी अयोनिजा कन्या सीताका पाणि-ग्रहण किया है। मैं इनके नगरमें जाऊँ, यह उचित होगा ?

मेरी कठिनाई मैं ही स्पष्ट नहीं समझ पाता तो दूसरेको कैसे समझा दूँ ? मैं ब्राह्मण हूँ। कभी विदेह राजकुलका कुल पुरोहित था। श्रीराम जब जनकपुर पधारे, महाराज सीरध्वज जनकका कुल पुरोहित मेरा पुत्र शतानन्द था। महाराज सीरध्वज और शतानन्दको तो मैंने समान रूपसे पुत्र माना है। तब वह धराके अङ्कसे उत्पन्न बालिका मेरी पौत्री नहीं है ? मेरा मन इसे स्वीकार नहीं करता। अहल्याके बार-बार अत्यधिक आग्रहके होनेपर भी मैं अयोध्या नहीं जा सका था।

'शतानन्द अयोध्या जाकर वहाँका आतिथ्य नहीं स्वीकार कर पाता और तुम वहाँ चलना चाहती हो ?' पत्नी मेरे तर्कको तब भी नहीं समझ पाती थी। महाराज जनकका पुरोहित अयोध्या जाय, इसमें उसे बाधा नहीं लगती थी ; किन्तु शतानन्द केवल पुरोहित था ? उन जनकात्मजाको देखकर कोई इतना तटस्थ रह सकता है ? शतानन्दको वे अपनी ही पुत्री लगती थीं, यही तो स्वाभाविक था।

अहल्या अब मेरे द्वारिका न जा पानेका संकोच समझ पावेगी ? उसे समझानेका प्रयत्न मैंने नहीं किया। जिनकी चरण-रजने उसे शाप सन्त्राससे मुक्त किया, उनके प्रति उसका वात्सल्य नहीं जागता ? उनका स्मरण उसे श्रद्धा विभोर कर देता है। उसकी श्रद्धाका सम्मान ही कर सकता हूँ मैं ; किन्तु अपने हृदयका मैं क्या करूँ ? मैं उन नीलसुन्दरका स्मरण करता हूँ तो मेरा वात्सल्य मुझे कुछ सोचने नहीं देता।

द्वारिका मैं नहीं जा सका। लगता नहीं कि जा सकूँगा कभी ; किन्तु अब तो ग्रहणके पवित्र पर्व पर वे वनमाली कुरुक्षेत्र आरहे हैं अपने पूरे परिवारके साथ। यहाँ मैं उनकी दर्शन कर सकता हूँ। पत्नीका अनुरोध, उत्सुकता भी पूरी हो जायगी।

ब्राह्मण नित्य अकिञ्चन—उन रमाकान्तको धनाध्यक्ष कुवेर भी कुछ देनेमें समर्थ है ? तीर्थमें उनका दान, उनका उपहार ग्रहण करनेके संकोचसे बचा जा सकता है, यही बहुत है। यह ब्राह्मण उन्हें आशीर्वाद दे आवेगा। त्रेतामें जो नहीं कर सका था, आज कर लेगा। आज वे मयूरमुकुटी रूपमें इसे मिलेंगे।

—०—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महर्षि लोमश—

अमर होनेका अर्थ क्या है, इसे कोई मरणधर्मा किसी प्रकार नहीं समझ सकता। अमरत्व वैसे निरपवाद तो अशक्य है। परिवर्तनशील कालके अङ्कमें कुछ अपरिवर्तित रह नहीं सकता। मेरा अमरत्व भी सापेक्ष है। सृष्टिकर्ता पद्मसम्भव मरते हैं तब मेरे शरीरका एक रोम टूट गिरता है। वह पुनः उगता नहीं। मेरे घुटनेके ऊपरका यह लगभग दो अङ्गुल भाग तो रोमहीन हो चुका। बड़े रोमोंसे भरे लोमशके शरीरका जिस दिन अन्तिम रोम गिरेगा, लोमशका शरीर भी गिर जायगा। मृत्यु दवे पैर मेरी ओर बढ़ती आरही है। केवल कुछ सहस्र ब्रह्मा उत्पन्न हों और मरें, वस इतनी आयु शेष है।

मनुष्य जैसे नहीं समझ पाता कि उसके एक दिनमें जिनकी कई पीढ़ी पूरी हो जाती हैं, वे कृमि उसे क्या समझते होंगे, उन कृमियोंका जीवन कितनी तीव्रगतिसे चलता है, वैसे ही लोमशको भी मानव नहीं समझ पाते।

तैंतालीस लाख, बीस हजार मानव-वर्षका एक महायुग अर्थात् चतुर्युगी। ऐसे एक सहस्र महायुगका ब्रह्माका एक दिन और इतनी बड़ी रात्रि। ऐसे तीस दिन-रात-का उनका मास, वारह मासका वर्ष और अपने वर्षसे केवल सौ वर्षकी आयु है ब्रह्माकी। एक ब्रह्मा मरता है तो मेरा एक रोम टूट गिरता है।

इस दीर्घायुकी एक समस्या है कि काल बहुत छोटा हो जाता है। जीवन अत्यन्त व्यस्त बन जाता है। कुछ भी व्यवस्थापूर्वक करनेको समय ही नहीं मिलता। मैं महायुग (चतुर्युगी) की बात करता हूँ तो वे मुझे पलोंसे भी अल्प प्रतीत होते हैं। इन नन्हें महायुगोंमें तो कुछ किया नहीं जा सकता।

जगदीश्वर जब जगतमें अवतीर्ण होते हैं तो उनका दर्शन करने एक वार भी उपस्थित न हुआ जासके, यह अशिष्टता लगती है; किन्तु ब्रह्माके एक दिनका नाम कल्प है और प्रत्येक कल्पमें पूर्णपुरुष एकवार अवश्य अवतरित होते हैं। एक ब्रह्माकी आयु ही मुझे एक घटी लगती है। ब्रह्माका एक दिन मेरे क्षणों जैसे हैं। अब प्रत्येक क्षण जिसे परमपुरुषके दर्शन करने दौड़ना पड़ता है उसकी व्यस्तताका कोई ठिकाना है?

परात्पर परम पुरुषका मैं किसी प्रकार उनके धरापर आनेपर दर्शन करलूँ, इतना पर्याप्त है, उनके अंशावतार, कलावतार, अवेशावतारोंका दर्शन करते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहनेका मेरे समीप समय नहीं है। उनमें-से कोई स्वयं लोमशके समीप आजायँ तो दूसरी बात है।

मेरे जैसा व्यक्ति किसीसे स्नेह नहीं कर सकता। कोई मनुष्य दीमकोंसे, परम सूक्ष्म कीटोंसे स्नेह करने लगे तो? उसे समस्त जीवन रुदन ही तो करना होगा? वह जिससे स्नेह करना चाहेगा, वही उसके सम्मुख मर जायगा। ब्रह्मा ही मेरे क्षणोंमें मर जाते हैं तो उनके पुत्र दिव्यलोकोंके ऋषिगण कैसे जीवित रह सकते हैं। उनमें किसीसे मेरे स्नेहका क्या अर्थ? कालने ही मुझे विरक्त एवं एकान्तप्रिय बना दिया है।

मेरी कठिनाई यह है कि अन्य प्राणियोंकी भाँति मैं पुरुषोत्तमके प्रति तटस्थ नहीं रह पाता। वे सच्चिदानन्दघन पृथ्वीपर पधारते हैं तो उनका दर्शन करने दौड़ता हूँ। उनको देखकर कोई उदासीन कैसे रह सकता है? लेकिन वे इतने अल्पकालके लिए धरापर आते हैं कि लोमश उनको कभी भरनेत्र देख भी नहीं पाता। कभी किसी कल्पमें वे एकाधिक बार धराको धन्य करने आते हैं, तब तो मुझे दौड़ा-दौड़में ही वह कल्प बीतता लगता है। पता नहीं अविनाशी कालातीत परम पुरुषको इतनी शीघ्रता क्या रहती है। धरादेवी उनकी पत्नी हैं तो आवें तो दो-चार कल्प बने रहें। जाना ही है तो सौ-पचास कल्पके पश्चात् पधारें। लोमश मरणधर्मा है, इसे ही वे क्षण-क्षण आते लगते हैं। वे अविनाशी—उन्हें इस दौड़ा-दौड़की क्रीड़ामें आनन्द आता होगा।

अभी-अभी त्रेता बीता है। मुझे लगता है कि मर्यादा पुरुषोत्तमके दर्शन करके अभी-अभी आश्रम आया हूँ और द्वापर भी बीतने वाला है। इस कल्पका यह अष्टाविंशति द्वापरान्त—परमपुरुष लीलामय पुरुषोत्तम पुन: पधारे हैं धरापर। शीघ्रता न करूँ तो इस बार उनके दर्शनसे ही वञ्चित रह जाऊँगा।

नहीं, दो क्षण भी बैठकर ध्यान करनेका अवकाश नहीं है। मर्यादा-पुरुषोत्तमका दर्शन करके लौटकर सन्ध्या करने लगा तो द्वापर आगया। अब ध्यान करने बैठूँ तो धरापर पधारे निखिल-सौन्दर्य-सिन्धुके दर्शनसे ही वञ्चित रह जाऊँगा।

कोई सुर, कोई ऋषि-मुनि मुझे कोई सूचना नहीं देता—दे नहीं सकता। मुझसे परिचित हो इससे पूर्व ही उसकी आयु पूरी हो जाती है। मुझे शीघ्रता करनी चाहिये। कुरुक्षेत्रमें वासुदेव पधार रहे हैं। वे वहाँ मुझे मिल जायँगे।

—:o:—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महर्षि मार्कण्डेय—

आशुतोष प्रभुके अनुग्रहसे अत्यन्त अल्पायु लेकर उत्पन्न मैं कल्पान्त अमर हो गया, यह बड़ा लाभ नहीं था। बड़ा लाभ मिला मुझे जीवनका कि मनकी तपमें प्रीति हुई। उससे बड़ा लाभ कि श्रीहरि एव हरमें अनुराग हुआ। इनके भक्तोंके प्रति प्रेम हुआ।

भगवान नर-नारायणने कृपा करके दर्शन दिया। वे अनुग्रह करके न पधारते, किसीकी कोई तपस्या कहाँ समर्थ है उनके श्रीचरणोंका साक्षात्कार करानेमें। लेकिन मैं भटक गया उनका दर्शन करके भी। मैंने उनसे माया देखनेका वरदान माँगा। मायाका दर्शन—अनन्तकालसे जीव मायाका ही तो दर्शन कर रहा है। मायापति पधारे और उन से मुझ अज्ञानीने माया-दर्शन की माँग की।

वे जनार्दन अनन्त करुणा-वरुणालय हैं। मेरी इच्छा पूर्ण करदी उन्होंने। उनके पादपद्मोंमें पहुँचकर कोई कामना कभी अपूर्ण नहीं रहती; किन्तु मुझे भटकने नहीं दिया उन दयासिंधुने। वह प्रलय पयोधि, उसमें अनन्तकाल तक उन्मज्जित-निमज्जित होनेका, जलजीवों द्वारा निगले जानेका, नोच-नोचकर खाये जानेका अकल्पनीय कष्ट—यही तो माया है। आनन्दघनकी गोदमें सोया शिशु स्वप्नमें यही सब तो देख रहा है। यह भवसागर स्वप्न ही तो है; किन्तु मुझे इस स्वप्नमें—मायादर्शनमें भी वे वटपत्रशायी शिशु बने मिले।

वह नवदूर्वादल श्याम नवनीत सुकुमार श्रीअङ्ग, वे अतिशय मृदुल अरुण चरण, अपने चरणके अंगूठेको करसे पकड़े मुखमें लेकर पी रहे थे। उनका वह घुंघराली अलकोंसे घिरा श्रीमुख। मैं कोटि-कोटि कल्प वैसे प्रलयपयोधिमें डूबने-उतारने को प्रस्तुत हूँ यदि वह श्रीमुख पुनः एकपलको देखनेको मिले।

मैं उन्हें अङ्कमें उठाने बढ़ा था। वे अनन्त किसीके अङ्कमें आते हैं। मैं नन्हे मच्छरके समान उनके श्वाससे खिंचा उनकी नासिकामें होकर उनके उदरमें पहुँच गया। यह सम्पूर्ण सृष्टि उनके उदरमें ही तो है। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड देखे मैंने वहाँ उस उदरमें और देखा कि काल उन मुकुन्दका केवल गनोविलास है। उनके उदरमें मैं कल्पपर्यन्त घूमता रहा; किन्तु वह काल निमेषमात्र था। मैं उनके निःश्वाससे ही तो निकल आया था।

माया-दर्शन क्लान्त श्रान्त नहीं करेगा तो क्या सुख देगा? मायामें भी कहीं सुख है? मेरे आराध्य भगवान महेश्वर अम्बाके साथ अकस्मात आ गये जब मैं वह माया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देखकर थका ध्यान करने बैठा था। वे वटपत्रशायी भी क्या भूले जा सकते हैं? उनकी एक झलक पाकर मन सदाको उनका ही हो गया। उनका ध्यान—मार्कण्डेयके मानसमें क्या दूसरा कुछ कभी आ सकता है?

आशुतोष प्रभुने अपने इस जनको अपनाया। इसे आशीर्वाद दिया। पुराणाचार्यता, ज्ञान वैराग्य, भक्ति—वे दाता देने लगते हैं तो उनका दान क्या सीमामें रहता है? विना माँगे उन्होंने मार्कण्डेयको अपने आशीर्वादोंसे आप्लुत कर दिया।

सब मिला; पर जैसे कुछ नहीं मिला। एक पिपासा प्राणोंमें बस गयी और वह तो बसी सो बस गयी। वह प्रतिक्षण प्रबल होती जाती है। उन वटपत्रशायीका श्रीमुख देखनेकी प्यास। उस माया-दर्शनमें मैंने प्रलयाब्धिमें देखा था उन्हें। उन सौन्दर्य सारसर्वस्वको अङ्कमें उठा लेनेको बढ़ा था। एकबार उनका स्पर्श पाता, उन्हें अपने अङ्कमें ले पाता........।

जो प्राणोंमें प्यास जगाते हैं, वही तृप्ति बनकर स्वयं आते हैं। मार्कण्डेयने कब कल्पना की थी कि माया-दर्शनकी माँग भगवान नर-नारायणसे करनेपर उस माया-स्वप्नके मध्य बालमुकुन्द इसे दर्शन दे जायेंगे। वह प्रलय-पयोधिकी उत्ताल तरंगें माया हों, यह समस्त सृष्टि माया ही तो है; किन्तु वे बालकुमुन्द, उनके वे पल्लवारुण नन्हे सुकुमार चरण तो परमसत्य हैं। वे नीलसुन्दर तो माया नहीं हुआ करते। वे स्वप्नमें भी आजायँ, प्राण सनाथ हो जाते हैं। मेरे प्राणोंकी प्रचण्ड प्यास उन्होंने ही तो प्रदीप्त की थी। वही उसे तृप्ति नहीं देते?

वे अपने जनपर नित्य कृपालु—मेरी पिपासाको परितृप्ति दिया उन्होंने। मैंने उन्हें पुनः देखा, उन्हें अङ्कमें उठाया। उनका वह भुवन-मोहन रूप नेत्रमें बसा था प्रलयाब्धिमें और उनका स्पर्श प्राणोंमें बस गया ब्रजमें श्रीनन्दरायके प्राङ्गणमें जाकर।

उनको प्रथम गोदुग्धपान कराना था। भगवती पूर्णमासी चन्द्रोज्ज्वल शंख करमें लिये उनको, उन्हीं मेरे वटपत्रशायी श्रीमुकुन्दको अङ्कमें लिये बैठी थीं। मेरा आह्वान किया उन्होंने। मुझे श्रीनन्दनन्दनको आशीर्वाद देना था। वही अतसीकुसुम सुकुमार श्रीअङ्ग, वही अलकोंसे घिरा चन्द्रमुख, वे ही अरुण मृदुल नन्हें चरण। मैं उन्हें अङ्कमें लेकर विस्मृत ही हो गया कि नन्दप्राङ्गणमें हूँ। उनका वह मन्द स्मित........।

वे अब द्वारिका जा बसे हैं; किन्तु मेरे हृदयसे तो वे एक क्षणको भी नहीं गये। वे नन्हे वटपत्रशायी—पर वे चतुर्भुज अखिलेश्वरके रूपमें अब कुरुक्षेत्रमें मिलेंगे मुझे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महर्षि पराशर—

अच्युत वासुदेवने जबसे पाण्डु-पुत्रोंको अपनाया है ; मुझे सत्यवतीके प्रति स्नेह हो गया है। अनेक बार मुझे उसका स्मरण हो आता है। अन्यथा मैं तो उसे सर्वथा भूल ही गया था।

मेरा स्खलन, मेरी विकृतिको भी विश्वेशने अपनी अर्चना स्वीकार कर लिया, यह उन सर्वेशकी अनुकम्पा। अल्पशक्ति जीवकी भूलोको वे सदासे सुधारते आये हैं। मत्स्यगन्धा मल्लाह कन्याके प्रति मेरा विकार अनुचित ही तो था। उसे योजनगन्धा बना देनेसे ही तो मेरा प्रायश्चित नहीं हो जाता; किन्तु मेरी च्युतिको दयार्णवने अपने अवतरणका उपकरण बनाकर मुझे, मेरे स्खलनको कृतार्थ कर दिया। वेदोंका चतुर्धा विभागकर्ता, महाभारत जैसे पञ्चम वेदका निर्माता कृष्णद्वैपायन भगवदंश है, यह सभी ऋषि-मुनियोंको स्वीकार है। यह अंशावतार ग्रहण करनेके लिए अखिलेशने मेरी विकृतिको ही निमित्त बनाया। उन लीलामयकी लीला अतर्क्य है। कौन अनुमान कर सकता है कि वे अपने किस कार्यमें कब निमित्त बना लेंगे ? किन्तु उनकी क्रीड़ाका उपकरण बनकर जीव कृतकृत्य ही होता है।

मेरी विकृति–बादरायणको पुत्र प्राप्त करके मेरी ग्लानि मिट गयी। मैं विषयाराम तो नहीं था कि योजनागन्धा सत्यवतीके प्रति मेरे मनमें अनुरक्ति जागती। इन्द्रियाराम पराशर है, यह आक्षेप भी इसपर कभी किसीने नहीं किया। ब्रह्मर्षि मुकुटमणि वशिष्ठके इस पौत्रको इन्द्रियवेगने, मदनने एक बार पराजित कर लिया ; किन्तु वह मेरी च्युति थी अथवा सर्वेशकी प्रेरणा, यह कहना कठिन होगया जब उसी च्युतिको निमित्त बनाकर बादरायणका आविर्भाव हुआ। वह च्युति भी हो तो उसने विश्वको कृष्णद्वैपायन जैसा वरदान दिया। मेरी ग्लानिको सर्वेशने गौरवान्वित कर दिया।

सत्यवती अब अनेक बार स्मरण आती है। महाभागा लगती है वह मुझे। उसके वंशमें, उसकी प्रेरणासे बादरायण द्वारा उत्पन्न पुत्रोंमें विदुर जैसा महाभागवत है। पाण्डुपुत्र तो वासुदेवको अत्यन्त प्रिय हैं। पाण्डुपुत्र बादरायणके पौत्र ही तो हैं और बादरायण मेरा पुत्र—सत्यवती मुझे स्मरण आती है। उसके स्मरणके साथ स्मरण आता है कि सत्यवतीने मुझे भगवद् भक्तोंका कुल पुरुष होनेका गौरव दिया।

परात्पर परम-पुरुष गोलोक-विहारी धरापर प्रकट हुए हैं। इन लीला पुरुषोत्तमका स्मरण—क्षणार्ध स्मृति भी जीवको धन्य-धन्य कर देती है। इनसे कोई सम्बन्ध बन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सके, इन्हें किसी प्रकार भी अपना कहा जा सके—जीवके एकमात्र ये अपने और विडम्बना यह कि माया-मोहित-मानवको ये ही अपने नहीं लगते। अविद्यान्धकारमें भटकता असंख्य स्वप्न-प्रेतोंको वह अपना-अपना पुकारता पकड़नेके प्रयत्नमें दौड़ रहा है, पर जो उसका सचमुच अपना हैं, उसे अपना समझ ही नहीं पाता। लीलामय जनार्दन ही अनुकम्पा न करें, जीव इनके अपनत्वको पहिचान कहाँ पाता है।

सत्यवतीने श्रीकृष्णको मेरा अपना बनाया। धन्य है वह महाभागा। वासुदेव उसके वंशोद्भवोंको परमप्रिय हैं। वे मयूर मुकुटी पृथाके भ्रातृपुत्र हैं। पाण्डव उनको प्राणके समान प्रिय हैं और पृथा-पुत्रोंके वासुदेव हृदय हैं, सर्वस्व हैं।

पराशर ऋषि है। सृष्टिकर्ताके साक्षात पुत्र ब्रह्मर्षि वशिष्ठका पौत्र है। इसे अपनी एक विकृतिको, उसके निमित्तको स्मरण नहीं करना चाहिये, यह तर्क अब कोई मूल्य रखता है? सत्यवतीका स्मरण मुझे स्मरण दिलाता है कि वासुदेवसे मेरा सम्बन्ध हो जाता है उसके माध्यमसे। श्रीकृष्ण मेरे हैं, यह स्मरण कराती है वह महाभागा। धन्य है मत्स्यगन्धा। आज मेरा मन उसे अपनी कहकर पुलकित होता है।

वासुदेव मेरे हैं। मेरे वंशधरकी सन्तानोंके सुहृद हैं, प्रिय हैं, भाई हैं। उनको देखलेनेकी, उनको आशीर्वाद दे आनेकी उत्कण्ठा मेरे हृदयमें बहुत प्रबल है; किन्तु अपने स्वभावका क्या करूँ? नगरोंसे सहज अरुचि है मेरी। सघन जनपदमें जैसे श्वासावरोध होने लगता है। द्वारिका बहुत बड़ा महानगर है। वासुदेवको देखनेकी अत्यन्त उत्कण्ठा होनेपर भी मेरी एकान्तप्रियता, अरण्यके प्रति आसक्ति मुझे द्वारिका-नहीं जाने देती।

कुरुक्षेत्र सूर्यग्रहणके समय किसी भी महानगरसे अधिक जनाकीर्ण हो उठेगा, यह जानता हूँ। लेकिन तब भी कुरुक्षेत्र तीर्थ है। पर्वपर तीर्थ-स्नान दिव्यलोकोंके ऋषियोंको भी अभिप्रेत रहा है। इस अवसरपर तो मेरे पितामह भी कुरुक्षेत्र पधारने वाले हैं। मेरी पितामही अरुन्धती देवी भी अपने सप्तर्षि लोकसे धरापर इस परमपर्व-पर आ रही हैं। अतः मैं भी कुरुक्षेत्र चलूँगा।

महापर्वका तीर्थ-स्नान--पराशरको क्या करना है पुण्योपार्जन करके? लेकिन यह उपार्जित पुण्य यह आशीर्वाद देकर वासुदेवको अर्पित करनेका अवसर छोड़ने योग्य है? इस समय वासुदेव—मेरे वासुदेव मुझे मिलेंगे।

—+—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महर्षि याज्ञवल्क्य---

अद्वितीय अनिर्वचनीय आत्मतत्व ही परमसत्य है। आत्माके अतिरिक्त जो कुछ प्रतीत हो रहा, केवल प्रतीत हो रहा है। इसमें कुछ तथ्य नहीं है। मृगमरीचिकाके समान, क्षितिजकी नीलिमाके समान प्रपञ्च असत्य है। अपने स्वरूपमें बाधित यह प्रतीति मायाका विलास है।

इस अद्वयतत्त्वमें अन्तःकरण भी बाधित ही है; किन्तु अन्तःकरणकी प्रतीति है, तब तक इसकी वृत्तियाँ भी हैं। ये अन्तःकरणकी वृत्तियाँ ही तो हृदयमें आसक्त होकर प्रपञ्चको सत्य प्रतीत कराती हैं और आवागमनके चक्रका कारण बनती हैं। प्रपञ्चके मिथ्यात्वका ज्ञान होकर ब्रह्मात्मैक्य बोधका उदय हुआ, अविद्या निवृत्त हो गयी, आवागमन फिर कहाँ और कैसा? जीवकी पृथक् सत्ता ही नहीं रही तो उसके जन्म-मरणका प्रश्न कहाँ रहा?

जीवनकी यह परम सार्थकता-सफलता है, अब यह बात मुझसे कही नहीं जाती। जानता हूँ, मनुष्य जीवनका परम लक्ष्य मोक्ष है; किन्तु यही सब कुछ है, कैसे कह दूँ? अद्वय सच्चिदानन्द जब सगुण-साकार होकर अवतीर्ण होता है, उस अनिर्वचनीय आनन्दघनका कभी भी साक्षात्कार प्रकृष्ट प्रीतिके द्वारा सम्भव है, केवल अनुभवैक-गम्य आत्मतत्त्वमें अवस्थितिको परम परिणिति कैसे मान लिया जा सकता है?

वासुदेव हृषीकेश किस अन्तःकरणमें नहीं हैं? लेकिन कल्मषाच्छन्न अन्तःकरणमें उनका आभास पाया नहीं जा सकता। अविद्याकी आत्यन्तिक निवृत्ति हुए बिना अन्तःकरण कहीं शुद्ध होता है। अविद्या-निवृत्ति हुई, अन्तःकरणका बाध हो गया, अद्वयतत्त्वमें अवस्थिति हो गयी, इसके पश्चात् भी कुछ है। वह वाणीका विषय तो नहीं है कि उसका वर्णन करूँ। लेकिन वह याज्ञवल्क्यका अपना अनुभव है।

लगता है कि अनन्त दयार्णव जिस अन्तःकरणको पावन प्रेमसे परिष्कृत करनेकी कृपा कर देते हैं, वह प्रेम परिपूत अन्त करण हो अविद्याकी निवृत्तिके पश्चात् इस अद्भुत स्थितिका अधिकारी हो पाता है।

श्रीकृष्ण नवनीत-चोर हैं। श्रुति ठीक ही इन्हें 'तस्कराणां पतये' (शुक्लयजर्वेदीय माध्यन्दिन शाखा १६.२१) कहती है। अविद्या-कल्मष रहित उज्ज्वलतम अन्तःकरण इन्हें नवनीत लगता है यदि उसमें प्रेमका माधुर्य हो। उसका अपहरण करते इन्हें विलम्ब नहीं लगता। आत्माराम, आप्तकाम मुनियोंके चित्तको बलात् चुरा लेना इन गोपकुमारका शाश्वत व्यसन है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृष्ण-आकर्षणकी सत्ता। अद्वय सच्चिदानन्द जब साकार आनन्दघन होकर इन्द्रिय-गोचर हुआ—गोविन्द बना, इसके आनन्दकी, माधुर्यकी कोई सीमा कहाँ है। यह सम्मुख न भी हो, इसकी स्मृति क्या अन्तःकरणको फिर अपनेसे पृथक होने देती है।

याज्ञवल्क्य योगी है—योगमार्गके पथिकोंका परमोपदेष्टा और तत्त्वज्ञान—अद्वय ब्रह्मबोधके अभीप्सु इसे ब्रह्मज्ञानका प्रकाशस्तम्भ कहते हैं। उपनिषदोंकी ब्रह्म-बोधक श्रुतियोंने स्वतः मुझपर अपना मर्म प्रकाशित किया है।

याज्ञवल्क्य दो-चार मन्त्रोंका दर्शन करके ऋषि नहीं हुआ। भगवान भास्करने वाजिरूप धारण करके स्वयं इसे शिष्य स्वीकार किया और सम्यक् श्रुति प्रदान की। शुक्ल यजर्वेद-सम्पूर्ण वाजसनेयी संहिताका द्रष्टा याज्ञवल्क्य परमर्षि हुआ। भुवन-भास्करके अनुग्रहसे।

यह सब है, यह सुयश है मेरा और इसका उपयोग है योगके साधकों तथा तत्त्व ज्ञानके जिज्ञासु जनोंके लिए; किन्तु याज्ञवल्क्य स्वयं में क्या है? इसे क्या सचमुच प्रिय है? किसीने पूछा नहीं कभी मुझसे। मेरी रुचिको, मेरे स्वरूपको केवल भरद्वाजने पहिचाना। उन्होंने मुझे परमानन्द प्रदान किया, जब प्रयागमें मुझसे रामचरित सुननेकी जिज्ञासा की। भरद्वाजने मुझे रामकथाका वक्ता बनाकर कृतकृत्य किया।

सगुण-साकार परात्पर पूर्ण तत्त्वका स्मरण, उनके चारु चरितोंका चिन्तन मेरा व्यसन बन गया। इतना अकल्पनीय आनन्द—याज्ञवल्क्यका चित्त चुरा लिया उस दूर्वादल श्यामने और अब वह धरापर अवतीर्ण हो गया है। मयूरमुकुटी सचमुच माखन-चोर बनकर पृथ्वीपर इस द्वापरान्तमें आया है।

उस गोविन्दको देखे बिना दृष्टिकी कोई दूसरी सार्थकता है? वह पृथ्वीपर प्रत्यक्ष है तो समाधिमें स्थित होना आवश्यक रह गया है? अद्वय आत्म तत्त्वके अनुसन्धान श्रमकी कोई सार्थकता है, जब वनमाली कमल-लोचन कौस्तुभाभरणके पादपद्मोंका दर्शन किया जा सकता है?

याज्ञवल्क्य औरोंके लिए योगी, तत्त्वज्ञ आदि कुछ भी हो, यह उस पद्मपलाश-लोचनका यशोगायक है अपनी दृष्टिमें और अपने उस ज्ञेय, ध्येयका कुरुक्षेत्रमें दर्शन करेगा। वे वासुदेव इसे मिलेंगे। अपने इस यशोगायकको पहिचान कर उत्साह पूर्वक मिलेंगे इससे।

—:*:—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महर्षि भरद्वाज--

अध्ययन, अध्यापन और सत्संग, इनके अतिरिक्त तो मैंने अपने जीवनमें अन्य साधन जाना नहीं। वैसे पुरुषोत्तम साधन साध्य हैं भी नहीं। मर्यादा-पुरुषोत्तम मुझ-पर क्या देखकर प्रसन्न हुए? वे जीवकी ओर देखकर कभी प्रसन्न हुए हैं कि मेरी ओर देखते? वे अपनी अहैतुकी कृपा से ही द्रवित होते हैं। मुझे भी वे अपनी करुणाके कारण ही प्राप्त हुए, इसमें सन्देहका कोई कारण नहीं है।

मैं सुरगुरुका औरस पुत्र हूँ, इसका तो कोई अर्थ ही नहीं है। इसके कारण तो मैं भाग्यहीन ही सिद्ध हुआ। माता-पिता दोनों जन्मके समय ही मुझे त्यागकर चले गये थे। मुझे तो बचाया ही उन सर्वेशकी करुणाने। असहाय नवजात पितृ-परित्यक्त शिशुको उनकी करुणाके अतिरिक्त कोई बचा सकता था। वनमें त्यक्त नवजात शिशुको वृक, व्याघ्रादि खा नहीं गये। वह बचा, बढ़ा और पालित-पोषित ही नहीं हुआ, मन्त्रद्रष्टा महर्षि बन गया। तीर्थराज प्रयागके पावन क्षेत्रमें आश्रम बनानेका अवसर मिला। सहस्र-सहस्र मुनि, मुनिकुमार इसके आश्रममें अध्ययनकी सुविधा पाते हैं; यह सब किसकी अहैतुकी कृपाका प्रसाद है?

मैं जिनकी कृपासे जीवित रहा, पला, बढ़ा और विद्या-बुद्धि पा सका, वे स्वयं पधारे थे मेरे आश्रम। अनुज एवं श्रीजनक-नन्दिनीके साथ वे स्वयं पधारे प्रयाग मेरे आश्रम। उन वल्कल-वसन, जटामुकुटीके दर्शन करके भरद्वाज कृतकृत्य हो गया। उन मर्यादा-पुरुषोत्तमका शील—वे इस ब्राह्मणकी विनयपूर्वक वन्दना करते थे; किन्तु मैं क्या अपने इन प्राणदाता, पालक, सर्वस्व दूर्वादल श्याम श्रीरामको पहिचानता नहीं। वही तो श्रुतियोंके परम प्रतिपाद्य हैं।

मेरा सौभाग्य, मेरे साथ उन सर्वेश्वरेश्वरका पक्षपात मेरे जन्मसे रहा है। मैं उनका रक्षित पालित शिशु, उन्होंने स्वयं आकर मुझे दर्शन दिया था और मुझे अकल्पित अहोभाग्य दिया उन्होंने सानुज, सपरिकर, ससैन्य भरतका आतिथ्य करनेका अवसर देकर। भगवत्प्रेमकी, भक्तिकी साकारमूर्ति भरतके दर्शन करके मैंने समझा कि श्रीरामका दर्शन ही पराकाष्ठा नहीं है। श्रीराम-दर्शनका फल भरतका दर्शन। भरतके श्रीचरण देखे बिना कोई समझ नहीं सकता कि भक्ति कहते किसे हैं।

श्रीरामभद्रकी कृपाकी कोई सीमा है? भरद्वाजके हृदयमें भक्तिका लेश भी हो तो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वह श्रीभरतलालके पादपद्मोंका प्रसाद होगा। लेकिन चौदह वर्ष वनमें रहकर मेरे वे सर्वस्व दशग्रीव-दलन करके लौटे तो भरतसे भी पूर्व उन्हें अपना पोषित बालक यह भरद्वाज स्मरणमें आया। इसे अपने, अपने सहायक वानरोंके आतिथ्यका अवसर अयोध्या पहुँचनेसे पूर्व दिया उन्होंने। वे तो पुष्पकारूढ़ थे, गगनपथ से जाना था उन्हें, सीधे अयोध्या चले जाते; किन्तु प्रयाग उनका विमान उतरा। अपनोंको विस्मृत करना वे जानते नहीं। भरद्वाजको छोड़कर जा नहीं सके—जा नहीं सकते थे।

भरद्वाजको अयोध्याके आमन्त्रणकी आवश्यकता थी? श्रीराघवेन्द्र मेरे सर्वस्व, वे यज्ञ दीक्षित होने जा रहे हैं, यह समाचार पाते ही मैं दौड़ जाता; किन्तु प्रत्येक यज्ञमें उन्होंने प्रथम स्मरण किया भरद्वाजका। इसे सादर आमन्त्रित किया।

अभी त्रेताको व्यतीत हुए ही कितने दिन बीते हैं। मुझे तो लगता है कि अयोध्याके सिंहासनपर मेरे वही कोदण्डधारी सीतानाथ विराजमान हैं। उन्होंने इस बार यज्ञ-दीक्षा ग्रहण करनेमें कुछ अधिक अन्तराल डाल लिया है। असंख्य यज्ञ कर लिये उन्होंने। अब थोड़ा समय प्रजा-रक्षणको भी देना चाहिये। वे श्रुतिके परम परित्राता मर्यादापुरुषोत्तम—मैं उनके द्वारा रक्षित, पालित, मैं उनका स्वभाव नहीं जानूँगा? वे यज्ञदीक्षा लेने ही वाले होंगे। मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ, उनका आमन्त्रण आता ही होगा।

'मर्यादा पुरुषोत्तम स्वधाम पधारे।' यह समाचार मिला था। मैं खुलकर हँसा था सुनकर। वे लीलामय हैं। लोकके अविद्या-मोहित जनोंको भ्रममें डालनेकी अच्छी लीला की उन्होंने; किन्तु अयोध्या उनका नित्यधाम, अयोध्यासे वे कभी अनुपस्थित होते हैं? अपने वन-गमन जैसी ही कोई लीला की उन्होंने तो अद्भुत क्या हो गया?

'इस द्वापरान्तमें वे धरापर फिर पधारे हैं।' मुझे यह सुनकर भी हँसी आती है। अयोध्या धराका भाग है? वे मथुरा आवें या द्वारिका, क्या अन्तर पड़ता है? मुझसे ही पूछकर तो वे मेरे आश्रम से चित्रकूट गये थे। कुछ वर्ष पञ्चवटी भी रहे थे और घूमघामकर अयोध्या लौट आये थे। अब वे द्वारिका हैं तो हुआ क्या?

'वे इस बार मयूरमुकुटी बनकर आये हैं।' मैं यह सुनता हूँ तो अच्छा लगता है। मैंने उन्हें वल्कल-वसन, जटामुकुटी देखा है। मैंने उन्हें राजराजेश्वरके सिंहासनपर देखा है। अब इस ग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें उन्हें मयूरमुकुटी देखूँगा। वे तो मेरे सर्वस्व हैं। इस वेशमें मिलेंगे मुझे वे।

—*—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवान बादरायण—

वासुदेवका यशोगायक है यह कृष्ण द्वैपायन। वेदोंका यज्ञोपयोगी विभाजन मैंने तो नहीं किया। यज्ञमें ऋत्विक ऋग्वेदका, होता यजुर्वेदका, उद्गाता सामवेदका, अध्वर्यु अथर्ववेदका उपयोग करते ही थे। मैंने केवल उनके उपयोगमें आने वाले मन्त्रोंको पृथक लिपिवद्ध करा दिया। कलिमें इतनी मेधा एवं धारणाशक्ति तो मानवोंमें नहीं रहेगी कि वे सम्पूर्ण संहिता स्मरण रख सकें।

स्त्री, शूद्र, व्रात्य, वर्णवहिष्कृतोंका अधिकार श्रुतिमें नहीं है। इसमें उनका ही हित है। श्रुतिका उच्चारण सम्यक् न हो तो वह पाठकर्ताका ही विनाशक हो सकता है और स्त्रीकण्ठसे प्लुतका उच्चारण सम्भव नहीं। अन्य अनधिकारी भी बहुत दीर्घकालीन अभ्यासके विना शुद्धोच्चारण कर नहीं सकते। इतना दीर्घकालीन अभ्यासावसर उनकी जीवन पद्धति उन्हें नहीं देती।

मानव जीवनका उद्देश्य ही है मोक्षप्राप्ति। इससे उसे वञ्चित नहीं किया जा सकता। जिनका श्रुतिमें अनधिकार है, उन्हें मोक्षमार्गका ज्ञान सुलभ होना चाहिये। धर्म, अर्थ, कामके भी शास्त्रीयमार्गका उन्हें ज्ञान मिलना चाहिये। सम्यक् ज्ञानका साधन उन्हें प्राप्त न हो तो वे उन्मार्गवर्ती होंगे ही। भगवान गणेशने कृपा की और मैंने श्रुतियोंका सम्पूर्ण तात्पर्य सर्वसामान्यके लिए सरल वनाकर सुलभ किया। नानाख्यानेतिहासकी सहायतासे महाभारतको सुवोध बना दिया। श्रुतिका सम्यक् तात्पर्य बोधक होनेसे मेरा महाभारत मुनिगणोंमें भी पञ्चमवेद कहकर प्रतिष्ठा प्राप्त कर सका।

पुराणोंका पुनरुद्धार आवश्यक था। सृष्टिकर्ताने ही साधन निष्ठाको लक्ष्य करके पुराणोंको व्यक्त किया था; किन्तु अत्यन्त दीर्घकालमें उनका प्रायः लोप हो गया था। रुचिभेदसे साधन भेद होगा ही। साधकोंमें जो सगुणोपासक हैं, उनमें रुचिके अनुसार आराध्य स्वरूपोंमें भेद होगा। उनको अवलम्ब ग्रन्थ उपलब्ध होना चाहिए जो उनकी निष्ठाको पुष्ट करे। उनको अपने अवलम्ब ग्रन्थमें ही सृष्टि प्रक्रिया, सर्ग-विसर्ग, मन्वन्तरादिका वर्णन मिलना चाहिए और वह उनकी निष्ठाके अनुरूप होना चाहिए। कल्पभेदकी सृष्टिका वर्णन इसे मूर्त करता ही है। अतः मैंने महापुराण, पुराण, उपपुराण, औपपुराणोंकी रचना की। प्रत्येक अष्टादश एवं अपने आपमें परिपूर्ण।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महापुराण सत्रह निर्मित हुए थे। मध्य-मध्यमें पुराण, उपपुराणादि बनते गये। सब हुआ किन्तु मेरे चित्तको सन्तोष नहीं हो रहा था। मैं समझ ही नहीं पाता था कि क्या अवशिष्ट रहता है, जिससे चित्त सन्तुष्ट नहीं होता। सृष्टिमें जो कारक पुरुष जिस उद्देश्यको लेकर आया है उसे परिपूर्ण किये बिना उसे परितोष प्राप्त नहीं हो सकता, यह मैं जानता था; किन्तु समझ नहीं पाता था कि महाभारत द्वारा श्रुतिका तात्पर्य सुलभ करके, सभी साधनोंको अवलम्ब पुराण देकर, ब्रह्मसूत्र द्वारा श्रुति तात्पर्य स्पष्ट करके भी क्या अवशिष्ट रह गया है।

देवर्षि नारदने दया की। उन्होंने दृष्टि दी। मैं तो परात्पर पूर्ण पुरुष वासुदेवका निसर्ग सृष्ट गुणगायक हूं। जीवोंका परमोद्धारक उन पुरुषोत्तमके चारु चरणोंका चिन्तन ही है। मैं धर्म, अर्थ, कामके श्रुति सम्मत साधन-विवरणमें व्यस्त बना था। मोक्षके भी विविध साधनोंको अवलम्व देनेमें लगा था; किन्तु जो सर्वसुगम है, जिसका वर्णन ही मेरे आविर्भावका प्रधान लक्ष्य है, उसे भी मैंने अन्य वर्णोंकी भाँति ही अनपाया था। वह मेरी कृतियोंके अम्बारमें लगभग तिरोहित हो रहा था। उसे प्रधानता दिये बिना मेरा अन्तर परितोष कैसे प्राप्त करता?

मैंने श्रीमद्भागवतकी रचना की और लगा कि मेरा जीवन कृतकृत्य हो गया। मेरे हृदयको पूर्ण परितोष प्राप्त हुआ। मैंने अपने शरीर धारणकी कृतार्थताका अनुभव किया। परम कृतार्थ हो गया मैं अपनी इस श्रेष्ठतम कृतिका अध्यापन अपने जन्मजात वीतराग परमहंस शिरोमणि पुत्र शुकदेवको कराके।

मैं वासुदेवका निसर्ग सृष्ट यशोगायक—वे मयूरमुकुटी मेरे हृदयधन हैं, मेरे सर्वस्व हैं। उनका दर्शन कुछ मास भी न हो तो लगता है कि मेरा जीवन शून्य हुआ जा रहा है। मैं समझ नहीं पाता हूँ कि यह कृष्णद्वैपायन उनके बिना रह कैसे सकेगा? इसे तो उन्होंने आगामी मन्वन्तरमें भी सप्तर्षि होकर रहनेका दायित्व दिया है। वे सर्वसमर्थ लीलामय—आज भी तो मैं व्याकुल होता हूँ तो हृदयमें प्रकट हो जाते हैं। वे इतनी ममता न करें, मैं द्वारिकासे दो दिन भी दूर रह सकता?

द्वारिका रह नहीं पाता। वे लीलामय बहुत अधिक सम्मान करते हैं। मेरे सत्कारमें ही वे व्यस्त हो जाते हैं और लोकालयकी मर्यादानुसार वह सत्कार स्वीकार करना पड़ता है। इससे उनसे दूर इस नर-नारायणाश्रममें ही रहना अच्छा; किन्तु कई महीने हो गये उनका प्रत्यक्ष दर्शन किये। जैसे कई कल्प बीत गये। अब यह ग्रहणपर्व उनके दर्शनका अच्छा अवसर है। कुरुक्षेत्रमें वे कमल-लोचन मिलेंगे।

—:*:—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महर्षि असित–

अध्यात्म-पथके जितने साधन हैं, उनमें सबसे ध्यान ही प्रमुख है। सबको ध्यानकी ही शरण लेनी है। मन ही मनुष्यके बन्धन और मोक्षका कारण है। गुणोंमें—सात्विक, राजस, तामस वृत्तियोंमें आसक्त मन बन्धनका कारण है। प्राणियोंमें, पदार्थोंमें, क्रियामें, भोगोंमें राग-द्वेष ही बन्धन है। यही मन राग-द्वेष रहित होकर अपने स्वरूपमें स्थित होजाय, इसका नाम मोक्ष। इस मोक्षका साधन ध्यान।

ध्यानकी जितनी वीथियाँ हैं, उनके पथिकोंका आचार्य है असित। धर्मका निर्देष्टा है यह। लेकिन असित भी असमर्थ है इस मयूरमुकुटी गोपीकुमार वनमाली वासुदेव से। व्रजमें यह नवनीत चोर था, गोपी वस्त्रापहारी था, अब वासुदेव द्वारिकाधीश होकर भी इसका स्वभाव गया नहीं। कोई अपना स्वभाव सहज नहीं छोड़ पाता। असितका शिष्य होगया होता, मेरे द्वारा निर्दिष्ट ध्यानका अभ्यास करता तो कदाचित अपने स्वभाव पर कुछ नियन्त्रण कर सकता ; किन्तु इसने तो असितको ही अपना आखेट बना लिया है। बचपनमें नवनीत-दधिकी चोरी करता था, बड़ा होकर चित्त चुराने लगा।

यह तस्कर शिरोमणि अव्यवस्थित दुर्बल जनोंकी ओर दृष्टि ही नहीं डालता। यह तो दुर्गम दुर्ग विजयका व्यसनी है। अतिशय दृढ़, परम परिशुद्ध अविचल चित्त इसके दीर्घदृग सहज देख लेते हैं और उनका अपहरण इसकी क्रीड़ा है।

असित आचार्य है ध्यान योगका। अपने आश्रितोंको, अन्तेवासियोंको निर्विकल्प समाधि सुगम-सुलभकर देता था। चित्त चञ्चल भी होता है, यह मैं जानता ही नहीं था। निष्कम्प, सर्वथा निरवलम्व, आभासहीन, अपने अधिष्ठान से अभिन्न ऐसी अनिर्वचनीय स्थिति जो वाणीका विषय नहीं—असितके लिए यह स्वाभाविक स्थिति। व्यवहार ही विक्षेप लगता है, विपत्ति लगती है और अब भी इससे भिन्न स्थिति नहीं है ; किन्तु मैं इस वासुदेवका क्या करूँ ? इसने कब मेरा चित्त चुपके चुरा लिया, मुझे भी इसका पता नहीं।

अब निरवलम्व ध्यान कल्पनाका विषय हो गया। अद्वय, निरञ्जन आत्मतत्त्वकी केवल मुखसे बात कर सकता हूँ। बहुत विषम स्थिति हो गयी है मेरी। व्यवहार अत्यन्त अप्रिय है। जनपद जैसे काटखाने दौड़ते लगते हैं। ससारकी ओर, शरीरकी ओर दृष्टि डालनेकी रुचि नहीं और एकान्तमें बैठने नहीं देता यह पीताम्बरधारी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पद्मपलाश लोचन। नेत्र बन्द करूँ या खुले रखूँ ; यह कौस्तुभकण्ठ जैसे सम्मुख ही सस्मित खड़ा हो जाता है।

असित जैसा ध्यान योगियोंका परमाचार्य और इसे उन्माद हो गया है। चाहे जब दौड़ पड़ता है, अट्टहास करता है, नाचने लगता है अथवा फूट-फूटकर रुदन करता है, यह अच्छी बात है ? एक ऋषिको यह सब शोभा देता है ? अपनी अवस्था मैं समझता नहीं हूँ, ऐसी बात नहीं है ; किन्तु मेरा चित्त मेरे वशमें, मेरे पास नहीं है। मैं विवश बन गया हूँ।

यह वनमाली दृष्टिके सम्मुख दीखता तो है ; किन्तु स्थिर कहाँ रहता है। यह चपल कभी मन्द स्मितके साथ निकट आता है, कभी दूर भाग जाता है। कभी नृत्य करता है, कभी गाता है कुछ और कभी इसकी वंशी—यह जब सम्मुख आता है, अपने शरीरका स्मरण कैसे रखा जा सकता है ? मुझे तो वैसे भी शरीरकी स्मृति रखनेका अभ्यास नहीं।

मैंने महर्षि बादरायणसे कह देखा। अपने उन्मादका उपाय पूछा उनसे। वे वेदोंके व्यासकर्ता, ब्रह्मसूत्रके निर्माता, इस वासुदेवके अतिशय प्रिय, उनसे ही कुछ आशा थी ; किन्तु वे तो सुनते ही उलटे मेरा आलिंगन करके स्वयं रुदन करने लगे। उनका रोम-रोम उत्थित हो उठा। उनके अङ्गका वह कम्प, उनके लिए बोलना ही सम्भव नहीं रह गया। मैं समझ गया कि मेरे इन सखाकी स्थिति भी मुझसे अच्छी नहीं है। व्रजके इन्दीवर सुन्दर चोरने इनका भी चित्त इनके समीप छोड़ा नहीं है।

इस बार अच्छी प्रकार सुनाऊँगा इसे। मुझे क्या भय या संकोच। कुरुक्षेत्रके महापर्व पर यह आ रहा है। महर्षियों और नरपतियोंके मध्य ही इसे भलीभाँति डाँट सकता हूँ। मेरा कोई भी क्या बिगाड़ लेगा ? अब असितके समीप बिगाड़नेको बचा भी क्या है ? लेकिन वासुदेव सम्मुख होगा तो मैं उसे डाँट सकूँगा ? मैं परोक्षमें, इस समय भी जब वह प्रत्यक्षसा लगता है, अपनेको विस्मृत कर बैठता हूँ, वहाँ मुझे डाँटनेका स्मरण रहेगा ?

यह असम्भव स्थिति है। चित्त उसने चुरा लिया तो उस पर रोष आवेगा कहाँ ? किन्तु कुरुक्षेत्र चलना तो है। वहाँ चित चोर मिलेगा। वह अपना सर्वस्व मिलेगा।

—*—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महर्षि मेधातिथि--

वेदव्यास महर्षि बादरायणके शिष्य जैमिनी मुझे परमप्रिय हैं। इसलिए प्रिय हैं कि वे पूर्वभीमांसाके कर्ता कर्ममें विश्वास करते हैं। श्रौत-स्मार्त कर्म करो, क्रियाशील रहो, सतत क्रियाशील रहो, यह उनका उद्घोष है।

चौरासी लक्ष योनियोंमें एक ही तो कर्म योनि है और उस मनुकी सन्तानको भी कर्मत्यागकी बात सिखलायी जाय, यह महर्षि बादरायणकी बात मुझे प्रिय नहीं है। मनुष्यको कर्म-स्वातन्त्र्य प्राप्त हुआ है तो उसे इसका सम्पूर्ण उपयोग करना चाहिए। वह कर्मत्याग करके सृष्टिकर्ताके उद्देश्यके प्रतिकूल आचरण नहीं करता ?

निष्कामत्वकी बात भी मुझे अटपटी लगती है। कामना निसर्ग प्राप्त नहीं है ? तब उसके त्यागकी बात क्यों ? अवश्य उस पर अंकुश आवश्यक है। अंकुश तो हमें अपने हाथ-पैरकी गति पर भी रखना पड़ता है। मनुष्यको बुद्धि व्यर्थ तो विधाताने नहीं दी है। बुद्धि रहित चेष्टा, विवेकहीन कर्म तो पशुत्व है; किन्तु श्रुति-स्मृति सम्मत कामना और उसकी पूर्तिके लिए कर्म करने पर प्रतिबन्धकी बात मुझे प्रिय नहीं। मैं मनुष्यको उद्भिज अथवा पाषाणप्राय बनते देखना नहीं चाहता।

मानवमें प्रचण्ड उद्योग होना चाहिए। मरणपर्यन्त अथक उद्योग, मेरे मतमें आदर्श मानवका यही स्वरूप है।

उद्योगशीलताको विना कामना बल कहाँसे मिलेगा ? आप्तकाम विश्राम करेगा या उत्तमशील होगा ? इसलिए मनुष्यमें असन्तोष अभिनन्दित होना चाहिए। असन्तुष्ट उद्योगरत मानवकी प्रबल कामना ही संसारमें सृजन करती है। यह कामना ही तप तथा त्यागका भी प्राण है।

जैमिनी मुझे प्रिय हैं; क्योंकि उनके दर्शनमें उद्दीप्त कामनाको एवं उस कामना पूर्तिको अविश्रान्त उद्योगका आह्वान है। मानव अल्पप्राण, अल्पसन्तोषी क्यों हो ? उसे महान उद्योग करना चाहिए। अश्वमेध, वाजपेय, वृहस्पतिसव जैसे महायज्ञ मनुष्य नहीं करेगा तो क्या श्रुतिमें इनका विधान पशुओंके लिए है ?

यज्ञ करो, तप करो ! संसारके अल्प भोगोंसे सन्तुष्ट मत हो। स्वर्ग जाकर अमृत पीनेको आकांक्षा करो और वहाँ से धरा पर लौट कर पुनः शक्ति, कुल, सम्पत्तिके अधिपति होनेकी आशा रखकर उद्योग करो। जैमिनीका यह उद्घोष प्राणवान है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सबसे बड़ी कठिनाई वासुदेव हैं। वे किसीको कहीं क्षणभरको मिल जायँ, मिलना तो दूर, उन पीतपटधारीकी कल्पित मूर्ति भी किसीके मनमें आजाय तो कर्मकी परम्परा ही समाप्त हो जाती है। तब वह प्राणी सृष्टिकर्ताके कामका ही नहीं रह जाता। जिसमें कामना नहीं, जो कामना प्रेरित उद्योगमें लगना नहीं चाहता, वह गिरिगुहामें समाधि लगावे या अपनी हृदयगुहामें निरञ्जन निर्विकारसे एक हो बैठे, उसे लेकर सृष्टिकर्ता क्या करें? उसे तो संसारके व्यवहारमें अपंग, अनुपयोगी प्राणियोंके समान मुक्त करना ही पड़ता है।

मैं सृष्टिकर्ताका सन्देह वाहक हूँ। आश्वस्त था कि ये गिरिगह्वरमें बैठने वाले पतञ्जलिके अनुयायी अत्यल्प होते हैं। उससे भी अल्प हो पाते हैं श्रवण-मननकी व्यर्थ सनकमें पड़े अपने आपमें ही बन्दी, अन्तर्मुख कहे जाने वाले अविचल—शून्यप्राय चित्त वाले लोग। इनके द्वारा सृष्टिमें कोई बड़ा व्यतिक्रम उपस्थित होनेकी आशंका नहीं है।

बड़ा व्यतिक्रम उपस्थित करते हैं वासुदेव। पता नहीं पद्मसम्भवने इन्हें अपनी सृष्टिमें आनेका आह्वान क्यों किया। ये आये तो अब इनका भुवन मोहन रूप, इनके अचिन्त्य प्रभाव नामको हटा लेना सृष्टिकर्ताकी भी सामर्थ्यमें है? ये तो कामना त्यागका अपने प्रेमकी संक्रामक व्याधिका ही प्रसार करने लगे हैं। इनकी झाँकी मिल जाय, इनका नाम श्रवणमें पड़ जाय, कोई मूर्ख ही प्राणी होगा कि फिर स्वर्गकी कामना करे। उसमें उद्योग भी जागेगा तो इन्हींको सन्तुष्ट करनेका और तब वह संसारमें आवेगा?

मैं दूसरोंकी बात क्यों कहूँ, स्वयं कर्मका प्रेरक-मेधातिथि कर्म कहाँ कर पाता है। कुछ करो भी तो वाणी बिना प्रयत्न कह देती है—'वासुदेवार्पणमस्तु'।

कोई यज्ञ अब विधि सम्मत नहीं हो पाता। मन्त्र कोई बोलो, मन्त्र देवताका ध्यान भी केवल जिह्वा बोलती है। यह मयूरमुकुटी चित्तमें आधमकता है ध्यानका प्रयत्न करते ही और यह कामतात आता है तो काम कैसे आवे? कामना कहीं अन्वेषण करने पर भी दीखती नहीं। यह अवस्था मेरी है तो औरों की? वासुदेव करना क्या चाहते हैं, उन्हींसे पूछना है। वे मुझे कुरुक्षेत्रमें मिलेंगे।

———

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पञ्चम खण्ड

[देवगण]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मंगलमूर्ति गणेश—

विघ्नेश्वर होनेसे मैं देवताओंमें प्रथम पूज्य हूँ। विघ्नोंके अधिदेवताकी कृपा किसे नहीं चाहिए। कार्यका निर्विघ्न सम्पन्न होना अथवा उसका विघ्न-बाधित होजाना दोनों मुझ पर निर्भर हैं।

मैं अत्यन्त असहनशील हूँ, यह मैं स्वीकार करता हूँ। मुझे किञ्चित् भी अपनी उपेक्षा सह्य नहीं है। प्रमादसे कोई मेरी प्रथम पूजा किये बिना कार्यारम्भ करे तो भी वह मुझे सहन नहीं होती। जानबूझ कर कोई मेरी उपेक्षा करेगा तो मैं उसे कैसे सह लूँगा।

समुद्र-मन्थनके प्रारम्भमें सुर-असुर दोनों एकत्र थे। स्वयं श्रीहरि अनुकूल थे उनके। उन लोगोंने मेरी उपेक्षाकी। जानता हूँ कि जानबूझकर नहीं की। उत्साहातिरेकमें सब मुझे भूल गये थे; किन्तु उसका फल उन्हें भोगना पड़ा। मन्दराचलने मार्गमें ही उनमेंसे अनेकको कुचलकर मार डाला। महोदधिमें उसे डाला गया तो डूब ही गया वह। सुर-असुर दोनों मेरी उपेक्षा करके व्यर्थ मनोरथ हो गये होते; किन्तु श्रीहरि शीघ्र सावधान हो गये। उन्होंने मन्दराचलसे कुचलकर मरे देव-दैत्योंको जीवित कर दिया था। मन्दरके डूब जाने पर उन्होंने मेरी अर्चा करादी। इतने पर भी देव-दैत्य तो विफल मनोरथ मैंने कर ही दिये थे। हरिको ही कच्छप बनकर मन्दरको पीठ पर धारण करना पड़ा। अमृत-मन्थन भी उनके ही श्रमसे सफल हुआ।

हरिके सम्मुख मैं हतप्रभ हो जाता हूँ, यह मुझे स्वीकार है। उन कौस्तुभ कण्ठका जब कोई स्मरण करता हूँ, मेरे विघ्न उस तक पहुँच ही नहीं पाते। इसलिए मैं मानता हूँ कि मंगलायतन तो वे रमाकान्त ही हैं। मैं तो विघ्नेश होनेके कारण मंगल-मूर्ति कहा जाता हूँ।

क्षीरोदधिशायीके सम्मुख ही मैं हतप्रभ हो जाता हूँ तब ये जो आजकल द्वारिकामें परमपुरुष वासुदेव विराजमान है, उनकी स्पर्धा मैं किस साहस पर करूँगा?

गणेश विघ्नेश्वर कैसे बनता यदि यह बुद्धिका भी अधिपति न होता। सृष्टिके सबसे उपद्रवी-तत्त्व विघ्नोंके देवताओंको निमन्त्रणमें कोई अपनी शक्तिसे रख सकता है? विघ्नेश्वर बुद्धि-विधायक है। इसी बुद्धिके कारण यह जानता है कि श्रीकृष्ण सर्वेश्वरेश्वर हैं। सुर-असुर सबका परमहित उनका स्मरण करनेमें है। समस्त शक्तिके स्रोत वासुदेव हैं। उनसे पृथक होकर तो कोई भी कुछ नहीं रह जाता।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शक्र सहस्राक्ष होने पर भी अज्ञ है। वह अपने सुराधिप होनेके गर्वमें अनेक वार मूर्खता करता है। बार-वार अपनी अज्ञताके कारण अपमानित होने पर भी उसे पुनः वैसी भूल करते देर नहीं लगती। अतः उसने ब्रजमें उत्पात किया, प्रलय-वृष्टि करके ब्रजको नष्ट करना चाहा या पारिजात-हरणके समय वासुदेवसे युद्ध करने दौड़ पड़ा, यह आश्चर्यकी बात नहीं है। श्रीकृष्णकी सानुकूलता न हो तभी शक्तिका स्रोत सूख जाता है, उन वनमालीके विरुद्ध जाकर तो विफल होना सदा सुनिश्चित है ही।

मुझे आश्चर्य हुआ था जब विश्वस्रष्टा चतुर्मुख ब्रह्माजी ब्रजमें बछड़े और गोप कुमारोंका अपहरण करके नन्दनन्दनकी शक्ति देखनेका साहस करने लगे। उन्हें तो पता होना ही चाहिए था कि गणेशने अपने गणोंको यह आदेश सदाके लिए दे रखा है कि जो पद्मपलाश लोचन वनमालीके विरुद्ध जाय, जिसके मनमें उनकी उपेक्षा स्थान पा सके, उसके विपरीत कोई भी उत्पात करनेको मेरे सब गण स्वतन्त्र हैं।

सृष्टिकर्ताको उनके अपने लोकके द्वारपाल द्वारा अपमानित होना पड़ा और यह सेवा भी गणेशको नहीं मिली। देवी योगमायाने यह कर लिया।* वे प्रमाद नहीं करतीं; किन्तु अवसर मिलता तो गणपतिके गण पद्मसम्भवको उससे अधिक कठोर ही दण्ड देते।

वासुदेव मेरी आत्मा हैं। वासुदेव मुझे अतिशय प्रिय हैं। वासुदेव मेरे सर्वस्व हैं। मैं अनर्चित भी उसके सानुकूल रहता हूँ जो उन मयूर मुकुटीका स्मरण कर लेता है। उन्हें जो अपना बना लेता है, उसकी ओर देखनेका साहस मेरा कोई गण स्वप्नमें भी नहीं करेगा।

मुझे अतिशय संकोच होता है जब वे वनमाली भी कर्मारम्भमें मेरी अर्चाका उपक्रम करते हैं। मैं उनकी इस अर्चासे बचने ही तो द्वारिका नहीं जापाता; किन्तु कुरुक्षेत्र जाऊँगा। इस रूपमें जाकर तो उन्हें संकोचमें नहीं डाल सकता; किन्तु कोई श्वेत महागज उस तीर्थमें महापर्व पर निकले श्रीकृष्णके कंठमें अपनी सूंड़से माल्यार्पण करे तो? यही ठीक है, वे वासुदेव पहिचान कर हँस पड़ेंगे; किन्तु मिलेंगे इस प्रकार अत्यन्त समीप।

—*—

*यह कथा 'नन्दनन्दन' में गयी है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवान शिव–

अपने वेशमें वहुत अधिक परिवर्तन अनावश्यक है। दिनमें जटाओंके मध्य चन्द्रलेखा स्वतः अलक्ष्य प्राय रहेगी। सुरसरिको जटाओंमें तिरोहित रहना चाहिए। मेरा तृतीय नेत्र भस्म-त्रिपुण्डमें स्वतः छिप जाता है। केवल कण्ठके नागको सचेत करना होगा कि वह इतना ढीला न बने कि कण्ठकी नीलिमा दृष्टि पड़ने लगे। व्याघ्राम्वर, डमरूकर, घूर्जिटके साथ वृषभ रहे तो भी कुरुक्षेत्रके ग्रहण स्नानार्थ आये अपार जनसमूहको कोई कुतूहल नहीं होना है। वहाँ बहुत अधिक अवधूत, जटाधारी, विचित्र वेश योगी, कापालिक आवेंगे।

वासुदेवकी दृष्टिको भ्रान्त नहीं किया जा सकता। मैं कोई भी वेश-परिवर्तन करलूँ, श्रीकृष्णके सम्मुख जाऊँ और वे पहिचान न लें, यह सम्भव नहीं है। पहिचान तो उन्होंने मुझे गोपी वेश तक में लिया, जब मैं रासके समय गया था।* अतः उनसे छिपे रहना है, ऐसा कोई वेश-परिवर्तन सम्भव नहीं। दूसरे तो सब माया-मोहित जीव हैं जो अविद्यान्धकारमें भटक रहे हैं और अपनेको ही नहीं पहिचानते, उनके सम्मुख शिव चला भी जाय तो इसे वे कैसे पहिचानेंगे ?

श्रीकृष्ण मिलेंगे। पहिचानकर ही मिलेंगे वे वनमाली; किन्तु वे तो मेरे हृदय हैं, मेरी आत्मा हैं। उन हृषीकेशको कहाँ अज्ञात रहता है कि किसके हृदयका भाव कैसा है। वे परम विनोदी प्रसन्न होंगे मेरे इस किञ्चित् वेश परिवर्तन से। मुझे संकोच भी नहीं होगा और वे यथेच्छ सत्कार भी कर सकेंगे। उन लीलामयके विनोदका मैं आनन्द ले सकूँगा।

'योगीश्वर पधारें! अहोभाग्य यादवोंका कि इनके शिविरमें सिद्धोंके परमगुरुके पादारविन्द पड़े।' वे हँसते-हँसते सत्कार करेंगे, पूजन करेंगे और अपने पुत्र, पौत्रोंको ही नहीं, माता-पिता-को, महारानियोंको, समस्त परिकरोंको पुकार लेंगे। निश्चय व्रजके लोगोंको और पाण्डवोंको भी बुला लेंगे। जिन पर भी उनका स्नेह है, उनकी ममता है, अवश्य सवको पुकार लेंगे और आनन्द विह्वल सबसे बार-बार कहेंगे— 'जन्म-जन्मके पुण्योदय हों तो इन योगिराजके श्रीचरणोंका दर्शन सुलभ होता है।'

'परिचय मत पूछो।' परमविनोदी वासुदेव पुलकपूरित श्रीअङ्ग कुछ ऐसा ही कहेंगे—'इनका परिचय देनेमें मेरी वाणी समर्थ नहीं। ऐसा कुछ नहीं जो इनके

---

* 'नन्दनन्दन' में यह कथा आयी है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सम्बन्धमें न कहा जा सके और ठीक-ठीक तो कुछ कहा नहीं जा सकता। ये अतर्क्य प्रभाव, अचिन्त्य स्वरूप, अकारण कृपालु पधारे, यही अपना अहोभाग्य।'

वासुदेवकी वाणी का—उस सुधास्निग्ध वाणीका रसास्वाद लेता, मैं उनकी, उनके स्वजनोंकी अर्चा ग्रहण कर लूँगा। उनके वर्णनको कह सकूँगा—'तुम मेरा वर्णन कर रहे हो या अपना ?'

'श्रीचरणोंका।' वे ऐसा ही कुछ कहेंगे—'मैं तो इन चारुचरणोंका विनम्र सेवक हूं। आपका स्नेहभाजन होकर अपनेको धन्य मानता हूं।'

श्रीकृष्ण ही समर्थ हैं इसमें कि वे सब कुछ कहकर भी कोई परिचय नहीं देते। सृष्टिमें सबसे प्रत्यक्ष वही हैं। सर्वरूपोंमें वही सर्वमय सम्मुख हैं; किन्तु उन्हें कोई पहिचान पाता है ? जो परिचय वे प्रकट न करना चाहें, उसका चाहे जितना विषद-वर्णन करें, कोई उनकी इच्छाके विना कैसे उसका यथार्थ समझ सकता है।

मैं द्वारिकाके शिविरमें अनेकोंसे अपनेको छिपा नहीं सकता। कितना भी वेश-परिवर्तन करलूँ, वहाँ ऐसे अनेक हैं जो दृष्टि पड़ते ही पहिचान लेंगे। श्रीकीर्तिकुमारी, श्रीसंकर्षणको कोई संकल्पज सम्पूण परिवर्तन भी भ्रान्त नहीं कर सकता। शङ्कर सामन्य भिक्षुक ब्राह्मण होकर भी जाय तो भी प्रद्युम्न, साम्ब, अनिरुद्ध, देवी रुक्मिणी ठगी तो नहीं जा सकतीं। लेकिन ये सब शीलसिन्धु हैं। कोई भी स्पष्ट परिचय देकर मुझे संकुचित नहीं करेगा। सब सस्मित अपने अधीश्वर मयूरमुकुटीका अनुगमन करेंगे। सब अटपटा परिचय देते रहेंगे स्वजनोंको और स्वयं उल्लास पूर्वक इस अवधूत की अर्चा करेंगे।

वेश-परिवर्तन तो मुझे सामान्यजनोंके लिए करना है। इसलिए भी वेश-परिवर्तन करना है, सामान्य परिवर्तन करना है कि वासुदेवको विनोदका अवसर मिले। मैं वेधड़क उन्हें, उनकी महिषियोंको आशीर्वाद देसकूँ उनकी पीठ पर अपने कक्षका मृगचर्म पटककर।

पुरुषोत्तम वासुदेवको आशीर्वाद—अटपटे आशीर्वाद दे आऊँगा। उनके योग्य उचित आशीर्वाद तो कोई है नहीं और उनको आशीर्वादका अर्थ अपने आपको ही आशीर्वाद देना तो है; किन्तु मैं उन्हें आशीर्वाद दे सकता हूं—'तुम्हें असत्यको भी सत्य कह देनेमें, कर देनेमें कभी कोई कठिनाई न हो।'

वे लीलामय हँसेंगे, प्रसन्न होंगे मेरी अर्चा करनेमें। अपने समस्त स्वजनोंके साथ आनन्द प्राप्त करेंगे मुझसे मिलकर। मैं मिलूँगा—कुरुक्षेत्रमें उनसे इसी प्रकार मिलूँगा।

———

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवती पार्वती--

वासुदेव द्वारिकामें हों अथवा अन्यत्र, जब उनकी महारानियाँ उनके समीप हों तो वहाँ उनकी सेवामें उपस्थित होनेमें किसी पर्वत-कन्याको क्या संकोच अथवा कठिनाई है कि मैं अपने नीलकण्ठ प्रभुके साथ जानेका आग्रह करूँ। वे एकाकी जाना चाहते हैं तो गिरिजा भी अपने ढंगसे जायगी।

श्रीकृष्णके अन्त:पुरमें पहुँचनेके लिए किसी पतिव्रताको पूर्व परिचयकी तो आवश्यकता नहीं है। वासुदेवकी रानियोंमें जैसे नारीमात्रके लिए अपार आत्मीयता है। वे किसीका नाम भी पूछ लें तो वह परम भाग्यवती होगी। अन्यथा वे तो मिलते ही ऐसा व्यवहार करती हैं जैसे उनकी कोई जन्मसखी कुछ क्षणोंके उपरान्त उनके-समीप पहुँची हो। अपरिचयका अज्ञानान्धकार उनके अन्त:करणको स्पर्श ही नहीं करता। निखिल सृष्टि उनकी ही अंशोद्भवा है। अपनी सन्तानोंसे उनका अपरिचय कैसा? वे किसीका परिचय क्यों पूछें?

मुझे वह क्षण कभी विस्मृत नहीं हो सकता जब मैं द्वारिका महारानी रुक्मिणीके स्वर्ण सौधमें प्रथमवार पहुँची थी। वे एकाकिनी बैठी थीं अपने कक्षमें और कुछ गम्भीर थीं। किसी चिन्तनमें लगी थीं। मेरे पहुँचते ही चौंकी--'आप.......?'

वे गम्भीर न होतीं, चौंकती नहीं तो इस प्रकार निश्चय नहीं पूछतीं। मुझे उनकी दृष्टि देखकर लगा कि मै पहिचान ली गयी। अब महारानी आसन देकर मेरी अर्चा करने उठेंगी। मैंने उन्हें आगे एक शब्द कहनेका अवसर दिये विना कहा--'यदि स्वामिनी सेविकाके साथ इस प्रकार व्यवहार करेंगी तो यह हठ करेगी कि इसे केशालङ्करणकी सेवा नहीं करनी। अबसे यह स्वामिनीके चरणोंमें अलक्तक लगाया करेगी।'

'सखि! तुम भी नटखट बन सकती हो?' महारानीके मुख पर मञ्जु हास्य खिल उठा। मैं उनके चरणोंकी ओर झुकी थी। उन्होंने खींचकर हृदयसे लगा लिया। उनकी वह हास्य छटा--जैसे सहस्र-सहस्र पूर्ण शशिकी ज्योत्स्नासे कक्ष उज्ज्वल हो गया हो और उस हास्यकी मधुर ध्वनि, इतना मधुर शब्द भी सम्भव है, यह मैंने भी नहीं जाना था।

मैं पहिचान ली गयी थी। वासुदेवकी पट्टमहिषीको कोई भ्रम नहीं हो सकता। मैं अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर भी उन्हें भ्रान्त नहीं कर सकती, यह मैं समझ गयी; किन्तु वे दयामयी मुझे संकोचमें नहीं डालना चाहती थीं। उन्होंने अंकसे मुझे लगाये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ही सहास्य कहा—'तुम अर्चा स्वीकार नहीं करोगी तो केशालङ्करण ही करो। कम से कम इस बहाने तुम्हारे कर तो मेरे मस्तक पर पड़ेंगे।'

मैं बोलनेका प्रयत्न करती तो यह सेवाका सौभाग्य भी मेरे हाथसे चला जाता। लेकिन महारानी ने तो उसी दिन अपनी समस्त सपत्नियोंसे मेरी प्रशंसा करके मेरा रहा-सहा संकोच भी दूर कर दिया। उन्होंने सब रानियोंको अपने सदनमें ही बुलवा लिया। मैं डर रही थी, कहीं सबकी सब रोली, कण्ठसूत्र लेकर मेरी पूजा न करने लगें। सबने प्रथम दृष्टिमें ही पहिचान लिया। सबने प्रथम मस्तक झुकाया; किन्तु महारानीने सम्हाल लिया। उन्होंने वैसे ही सहास्य कहा—'इन सम्माननीय सखीसे हम सब परिचित तो हैं ही। पर्वत-पुत्रियाँ केशालंकरण कलामें सर्वश्रेष्ठ होती हैं। ये केशालंकरण तो करेंगी ही, अपनी कला भी सिखलावेंगी हम सबको।'

'महारानी सेविका पर कृपा करें।' मैंने अञ्जलि अवश्य बाँध ली; किन्तु विनोद-पूर्वक ही कहा—'यह कला ही तो मुझे सेवाका सौभाग्य देती है। इसे देनेमें मैं अत्यन्त कृपण हूँ।'

महारानीने दोनों करोंमें मेरी अञ्जलि पकड़ली—'तुम मेरी सब बहिनोंके सम्मुख मेरी केशसज्जा करदो। ये भी देखें कि मैं कितनी भाग्यशालिनी हूँ।'

'लेकिन इनमें कोई इतनी कृपा-कृपण नहीं होंगी कि मुझे इस सेवाका अवसर न दें।' मेरी यह बात सहज स्वीकार हो गयी। मैं उसी क्षण श्रीकृष्णकी रानियोंकी केशालंकार करने वाली प्रिय सखि बन गयी। उन सबने मुझे आत्मीया मान लिया।

द्वारिकाके अन्त:पुरमें किसीको मेरे परिचयकी आवश्यकता नहीं। पार्वती, गिरिजा ये नाम तो कोई ऐसे नहीं कि किसीको चौंकायें और कोई पुकारे तो मैं क्यों चौंकने लगी। महारानियोने सखि स्वीकार कर लिया तो दूसरोंसे मुझे प्रयोजन भी क्या है।

कुरुक्षेत्रमें वासुदेव सपरिवार तीर्थ-स्नान करने आरहे हैं। तीर्थमें ग्रहण-स्नान तो महारानियाँ मस्तक आर्द्र करके उन्मुक्तकेशा करेंगी। उसके पश्चात् उन्हें अपनी यह केशसज्जा करने वाली सखि स्मरण नहीं आवेगी? मैं इस अवसर पर अनुपस्थित रहूँ, उनकी सेवाके सौभाग्यसे वञ्चित हो जाऊँगी।

कुरुक्षेत्र तो मुझे जाना ही है। केश-प्रसाधनकी अपनी कलाको केवल श्रीकृष्णकी महारानियोंकी सेवा करके सार्थक कर सकती हूँ। अन्यत्र तो कहीं कोई है नहीं जो गिरजाको यह अवसर दे। मैं कुरुक्षेत्र अकेली जाऊँगी। अपने ढगसे जाऊँगी। वहाँ वासुदेवकी रानियोंकी केश-सज्जा मिलेगी मुझे।

—×—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवती लक्ष्मी—

वृन्दावनमें मुझे प्रच्छन्न ही रहना पड़ा। परात्पर पुरुषकी सेवा मैं प्रकट नहीं कर सकती थी। श्रीकीर्तिकुमारीकी सेविकाओंमें भी सम्मिलित होनेका अधिकार मुझे प्राप्त नहीं हुआ। उन श्रीवृषभानु-नन्दिनीकी पद-वन्दना कर पाती.........इस अभिलाषाको मैं त्याग भी नहीं पाती हूँ।

द्वारिकामें उन वनमाली कमल-लोचनकी चरणसेविका हूँ। मेरे अनन्त करुणालय स्वामीको इस सेविकाकी अपेक्षा नहीं है। वे नित्य आप्तकाम ; किन्तु इस किंकरीका तो उनके पाद-पद्मोंके अतिरिक्त दूसरा कोई आश्रय नहीं है। उनकी अनुकम्पा कि उन्होंने श्रीवत्सके रूपमें इसे अपने वक्ष पर स्थान दिया ; किन्तु सिन्धुजा जानती है कि इसका उचित स्थान उनके श्रीचरणोंके समीप ही है।

उन्होंने मेरी प्रार्थना—मेरे प्राणोंकी कातर प्रार्थना स्वीकार करली। बार-बार वे ऐसी कृपा करते ही हैं। क्या कर लेती मैं यदि वे स्वयं क्षीराब्धि मन्थन करके मुझे प्रकट होनेका अवसर न देते? भले सब सुर, असुर, योगीन्द्र-मुनीन्द्र, लोकपाल मेरी प्राप्तिको उत्सुक थे, उन्होंने तो मेरी ओर दृष्टि उठाकर भी नहीं देखा था। लेकिन पद्माको उनके पाद-पाद्मोंके अतिरिक्त कहीं स्थान है? उनके कण्ठमें वरमाला डालकर तो रमा ही सनाथ हुई थी।

यहीं इस द्वापरान्तमें वे रुक्मिणीको बलपूर्वक लेने न गये होते, क्या कर लेती मैं? उन्होंने तो एक बार कह भी दिया था—'अन्य मनोलग्ना कन्याकी प्राप्तिमें उन्हें कोई उत्साह नहीं।*

श्री उनकी शाश्वत चरण-चर्चिका। यह अन्य मनोलग्ना होकर कहाँ जायगी? उन दयामयने अपनी इस नित्य आश्रिताको दया करके अपनाया। रुक्मिणी बनकर इसने द्वारिकामें उनके श्रीचरण प्राप्त किये। लेकिन निखिल लोकेश्वर मयूरमुकुटी नन्दनन्दन बनकर व्रजमें प्रकट हुए और उनकी आह्लादिका, सर्वेश्वरी व्रजयुवराज्ञीकी पद-धूलि तो प्राप्त नहीं ही हो सकी इस उदधि-सुताको। श्रीराधाकी पद-रेणु—उसकी प्राप्ति-कामना प्रबल है अन्तरमें और कोई मार्ग व्रजमें उसे पानेका मिलेगा, इसकी आशा कहीं से नहीं।

श्रीव्रजराज सूर्य-ग्रहणके अवसर पर कुरुक्षेत्र आ रहे हैं। श्रीवृषभानु-नन्दिनी सखियोंके साथ आ रही हैं कुरुक्षेत्र। व्रजमें किसीको ग्रहण-स्नानका पुण्योपार्जन सूझता है?

* 'श्रीद्वारिकाधीश' में पूरी कथा है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वनमाली, मयूरमुकुटी मिल सकेंगे इस अवसर पर, यही लालसा व्रजजनोंको कुरुक्षेत्र लारही है; किन्तु यह अवसर इन्दिराके लिए भी तो है। यह पुण्य पर्व, यह धर्म क्षेत्र सिन्धुसुताकी भी तो कामना पूर्ण कर दे सकता है।

महारानी रुक्मिणीके रूपमें मुझे श्रीकीर्तिकुमारीका सत्कार करनेका अवसर मिलेगा। मैं उनका आतिथ्य कर सकूँगी। वे मुझे भुजा फैलाकर आलिगन देंगी। लेकिन उनकी पद-रज तो रुक्मिणीको नहीं मिलेगी। वे संकोचमयी अपना चरण-स्पर्श श्रीकृष्णराजमहिषीको करने दें, इसकी तो कोई सम्भावना नहीं है।

सिन्धुसुताको उन महाभावरूपा परमाह्लादिनीकी पद-रज अभीष्ट हैं और उनकी सखियाँ, उनकी महाभागा सेविकाएँ इस पद्माको उनके पादपद्मों तक पहुँचने देंगी नहीं। यह व्रजयुवराज्ञीकी पादस्पर्शाधिकारिणी जो नहीं है।

एक ही उपाय है। यह अधिकारिणी हो या नहीं, अकारण कृपालुने इसे अपना लिया है। द्वारिकामें इसे अपनी चरण-सेविका स्वीकार कर लिया है। इस नाते कुरुक्षेत्रमें रुक्मिणीके शिविरमें आना श्रीवृषभानु-नन्दिनी अस्वीकार नहीं कर सकतीं। वे आवेंगी और सत्कार स्वीकार करेंगी अपने सहजशीलके कारण।

लक्ष्मी अपने ही शिविर में—अपने रुक्मिणी रूपसे भिन्न एक दासी रूपमें भी तो रह सकती है। महारानी रुक्मिणी अपनी दासीको श्रीवृषभानु नन्दिनीके चरणोंमें अलक्तक सज्जाका आदेश करेंगी तो संकोचमयी श्रीराधा इसे अस्वीकार कर सकेंगी? वहाँ श्रीराधाकी सखियाँ वारित कर सकेंगी सेविकाको?

जानती हूँ—उन सर्वेश्वरीको धोखा नहीं दिया जा सकता। वे पहिचान तो लेंगी ही कि यह किंकरी भी उनकी ही अंशोद्भवा है; किन्तु उन संकोचशीलाको मर्यादा तो रखनी ही पड़ेगी। महारानीको वे भले चरण-स्पर्श न करने दें, दासीको तो वारित नहीं किया जा सकता।

श्रीराधाके परम मृदुल अरुण पादपद्म अपने करोंमें लेकर उन्हें अञ्चलसे पोंछ लेनेका, करोंसे स्पर्श करनेका, भली प्रकार समीप देखनेका और अलक्तक सज्जाके लिए देर तक अङ्कमें रखनेका अवसर प्राप्त होगा। अवसर प्राप्त होगा उनके उन चारु चरणोंकी पद-रज पानेका। मैं अपनी अलकोंसे उन चरणोंको पोंछ लूँगी। वे हँसेंगी, उनकी सखियाँ हंसेंगी इसधृष्टता पर; किन्तु वे श्रीचरण मुझे मिलेंगे तो सही।

—:०:—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

FORGET

To forgive and forget is not a sign of weakness, it is a positive sign of greatness; just as remembering is an art, similarly forgetting is not less an art.

—✶—

डालमिया सिमेंट (भारत) लि.

डालमियापुरम्—६२१६५१ (तमिलनाडु)

●

मुख्य कार्यालय

११-१२, हंसालय, १५ बाराखम्भा रोड,
नयी दिल्ली-११०००१

●

'रॉकफोर्ट' वज्रचूर्ण (सिमेंट) के निर्माता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Licensed to post without Pre-payment. Mathura-1 Licence No. MTR-5
भारतीय डाक-तार विभागकी पंजीयन संख्या—एम० टी० आर०-४५

ADVICE TO HUSBAND

Be to her virtues very kind;
Be to her faults a little blind.

—Prior

उड़िशा सिमेंट लिमिटेड

राजगंगपुर—७७००१७ (उड़िशा)

वज्रचूर्ण (CEMENT)

तथा

ऊष्मसह (Refractories) के निर्माता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri